ISSN No: 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

भाग 1 अंक 4 अप्रैल 2024

Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors
SAAHAS

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, (U.P.) दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Article Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक	:	**डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, उद्यान विज्ञान विभाग एवं फल विज्ञान विभाग चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
वरिष्ठ संपादक	:	**डॉ. रोशन लाल राऊत** वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (एम.पी.)
सह सम्पादक गण	:	**डॉ. नीलम राव रंगारे** वैज्ञानिक, संस्था निदेशालय इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़) **डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह** पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक,पशुपालन एवं डेयरी विभाग, शुआट्स, (उ.प्र.) **डॉ. खलील खान** मृदा वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र दलीप नगर कानपुर देहात, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर (उ.प्र.) **डॉ. प्रमिला** सहायक अध्यापक-सह-वैज्ञानिक, सब्जी विज्ञान, उद्यान विभाग पं. दीन दयाल उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपरी, कोठा, बिहार **प्रखर खरे** एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)
पांडुलिपि संपादक	:	**स्निग्धा हल्दर** सहायक संपादक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)
कंटैट लेखक/ स्तंभ लेखक	:	**डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय** विशेष कार्य अधिकारी आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग (झारखण्ड)
फोटोग्राफी	:	**स्वप्निल सुभाष स्वामी** वेब एडिटर प्रितेश हलदार
प्रकाशक	:	**एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)**
प्रकाशक	:	**Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)**

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- अरहर की उन्नत खेती 1-2
  शाओन चक्रवर्ती एवं विवेक कश्यप
- आलू की उन्नत खेती 3-4
  आदित्य तिवारी एवं श्रेया तिवारी
- धान की उन्नत खेती 5-6
  शाओन चक्रवर्ती एवं विवेक कश्यप
- अधिक उत्पादन हेतु डी.ए.पी., एन.पी.के. एवं सुपर फॉस्फेट उर्वरक का प्रयोग 7-8
  गौरव शुक्ला एवं खलील खांन
- विदेशी पत्तेदार सब्जी (लेट्यूस) की खेती 9-11
  आनंद साहिल एवं शीतल रावत
- भारतीय कृषि में ड्रोन तकनीक 12-14
  कुमारी अंजना गुप्ता एवं आर. एल. राऊत
- रासायनिक उर्वरकों का मृदा एवं फसलों की गुणवत्ता पर प्रभाव 15-16
  संजीव कुमार बन्याल, दीपा शर्मा, निखिल ठाकुर एवं विनीत शर्मा
- दलहनी फसलों के लिए लाभदायक राइजोबियम जीवाणु 17-19
  प्राची राठौर एवं खलील खांन
- औषधिय गुणों से परिपूर्णः सहजन 20-22
  आनंद साहिल
- गेहूँ के प्रमुख कीट, रोग, पहचान तथा रोकथाम 23-27
  अभिषेक सिंह, बुरुध मधु, सुभम सिंह, विवेक विश्वकर्मा एवं ऋचा साहू
- कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीक के प्रयोग की सफलता 28-30
  अंजना गुप्ता एवं आर. एल. राउत
- आंवला की खेतीः महत्व, उपयोग एवं उत्पादन 31-35
  ओमवीर सिंह, रत्ना राय एवं गोपाल मणि
- भविष्य में संरक्षित खेती का महत्व 36-37
  अंकित सिंह, शशि बाला, शिवराज कुमार वर्मा एवं सुनील कुमार सिंह
- बढ़ते शहरीकरण में ऊर्ध्वाधर उद्यान की महत्वता 38-42
  देवांशु शुक्ला, कृष्णा कौशिक, कुशल चतुर्वेदी, मनीष कुमार, मौ. वामिक
- सब्जियों वर्गीय फसलों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव 43-45
  मनीष कुमार, सत्य प्रकाश, मो. वामिक एवं कृष्णा कौशिक
- समाज के विकास में सामुदायिक रेडियो की भूमिका 46-48
  अलीमुल इस्लाम एवं नौशाद आलम
- हाइड्रोपोनिक्स खेतीरूएक संक्षिप्त परिचय 49-50
  अलीमुल इस्लाम एवं नौशाद आलम

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

ISSN No. 2583-3316

अरहर की उन्नत खेती

शाओन चक्रवर्ती एवं विवेक कश्यप
विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र, देवघर
पत्राचारकर्ता: shaonchakraborty1994@gmail.com

परिचय

अरहर हमारे देश की बहुप्रचलित एवं लोकप्रिय प्रमुख दलहनी फसल है, जैसा कि हम जानते है हमरे शरीर के लिए प्रोटीन बहुत जरुरी होता है। अरहर की दाल को प्रोटीन का मुख्या श्रोत माना जाता है। प्रोटीन युक्त होने के कारण लगभग सभी घरो में अरहर की दाल को भोजन में शामिल किया जाता है। भारत विश्व में सबसे ज्यादा अरहर का उत्पादन करने वाला देश है, जिसको मुख्य रुप से खरीफ मौसम में उगाया जाता है। चने के बाद अरहर भारत की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। यह फसल मिट्टी में वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिर करती है, जो मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में मदद करती है। अरहर अपनी गहरी जड़ प्रणाली के कारण वर्षा आधारित खेती में उत्कृष्ट प्रदर्शन करती है। देवघर जिले के किसान खरीफ मौसम में अरहर की खेती करते है, लेकिन जलवायु परिवर्तन, उचित समय पर उपादान की कमी से संबंधित कई बाधाओं के लिए वैज्ञानिक उपायों के माध्यम से संबोधित करने की आवश्यकता है, जिससे बेहतर उपज प्राप्त किया जा सकें।

उन्नत प्रभेद

उन्नत प्रभेद	फसल की अवधि (दिन)	औसत उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	विशेष गुण
बिरसा अरहर -1	190-200	16-18	मिश्रित खेती के लिए उपयुक्त
आइ.पी.ए 15-2	240-250	25-27	उकठा रोग एवं फल छेदक प्रतिरोधी
आइ.पी.ए-203	240	24-26	रोग प्रतिरोधी
बिरसा अरहर -2	230-240	25-28	पत्र लांछन रोग प्रतिरोधी

भूमि

इसे विभिन्न प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है पर हकी दोमाठ अथवा मध्यम भूमि जिसमें प्रचुर मात्रा में फॉस्फोरस तथा pH मान 7-8 बीच के हो, व समुचित जल विकास वाली हो। इस फसल के लिए उपर्युक्त है।

खेत की तैयारी

खेत को सबसे पहले मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करनी चाहिए। इसके उपरांत दो से तीन जुताई करने के बाद खेत में नमी रखने के लिए व समतल रखने के लिए एक बार पाटा चलाने की आवश्यकता है। जुताई के समय 5 टन/हेक्टेयर की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद डालना चाहिए। अरहर जलभराव के प्रति संवेदनशील है और इसलिए इसे ऊपरी जमीन में उगाया जाना चाहिए।

बुआई का समय

अरहर की बुआई मध्य जून से मध्य जुलाई तक कर देना चाहिए।

बीज दरः 18-20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर।

उर्वरकः25:50:25:20 किलोग्राम एन.पी.के.एस. प्रति हेक्टेयर, चूना- 4 क्विंटल प्रति हेक्टेयर कतार में डाले।

जीवाणु खादः बुआई से पहले राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार लाभकारी होता है।

निराई-गुड़ाईः अरहर की अच्छी उपज के लिए दो बार निराई-गुड़ाई की आवश्यकता होती है। पहली निराई-गुड़ाई बुआई के 25-30 दिनों के बाद एवं दूसरी 50-55 दिनों में करे।

खरपतवार नियंत्रणः खरपरवार नियंत्राण के लिए इमाजेथाईपर- बुआई के 20-25 दिनों के बाद 750 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कीट प्रबंधन

फली छेदकः अरहर में अनेक प्रकार फलीछेदक का प्रकोप देखा जाता है। पिल्लू फलियों में छेदकर दानें को खा जाते है। वहीं फलमक्खी की शिशु भी दाने को नुकसान करता है, जबकि फली बग फलियों का रस चूसते है, जिससे फलियों का विकास रुक जाता है।

प्रबंधन

नियंत्रण के लिए दो या तिन बार कीटनाशक का छिड़काव अवश्य करना चाहिए। पहला छिड़काव इनडोक्साकार्ब @ 0.5

मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर साफ़ मौसम में प्रयोग करना आवश्यक है। जब फसल में 50% फूल निकल आते है, दूसरा छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल. @ 0.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर साफ़ मौसम में प्रयोग करना आवश्यक है।

रोग प्रबंधन

उकठाः रोगी पौधो की पत्तियाँ पीली पड़ जाती है तथा पौधे मुरझाकर सूख जाते है। साथ ही पौधो के तने का निचला भाग भी काला पड़ जाता है।

प्रबंधन

प्रबंधन के लिए अरहर के साथ ज्वार की बुआई करे। रोगग्रस्त पौधे को अलग कर जला दे। आइ.पी.ए-203 एवं बिरसा अरहर-1 रोगरोधी किस्में लगाए। बीजोपचार कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से शोधित करे।

अल्टरनेरिया पत्रलांछन एवं अंगमारी रोग

इस रोग से संक्रमित पौधो के पत्तियों पर भूरे रंग के गोलाकार से अनियमित धब्बे बनते है, जो बाद में काले रंग के हो जाते है और पत्तियाँ झुलस जाती है।

प्रबंधन

रोग के लक्षण दिखते ही इंडोफिल एम 45 @2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर साफ मौसम में प्रयोग करे। छिड़काव के दो सप्ताह बाद यह प्रयोग फिर से दोहरायें।

निष्कर्ष

देशभर में उगाई जाने वाली एक महत्यापूर्ण फसल है। पोषक व प्रोटीन युक्त होने के कारण इसकी अत्याधिक माँग है। इनके कई प्रकार के कवक का संक्रमण होता है, जिसके कारण उत्पादन घट रहा है। यदि हम उपर्युक्त विधियों को अपनाकर इसकी खेती करे तो हम उपज में वृद्धि कर इसके उत्पादन की कमी पूरा कर सकते है।

❖❖

❖❖

ISSN No. 2583-3316

आलू की उन्नत खेती

आदित्य तिवारी[1] एवं श्रेया तिवारी[2]
[1]किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग, सतना
[2]कृषि प्रसार, म.गॉं.चि.ग्रा.वि., चित्रकूट, सतना
पत्राचारकर्ता: adityatiwari1999@gmail.com

परिचय

भारत में आलू की खेती रबी की फसल के साथ कंदवर्गीय सब्जी के रूप में पैदा की जाती है। विश्व में आलू उत्पादन में भारत का तृतीय स्थान है। आलू की उत्पत्ति दक्षिण अमेरिका को माना जाता है। पहली बार आलू भारत में सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप से आया। हमारे देश में आलू को अत्यधिक पसंद किया जाता है। इसका प्रयोग किसी भी सब्जी के साथ किया जा सकता है। इसकी उपज अन्य फसलों से अधिक है। यह सब्जियों का राजा कहा जाता हैं। इसी कारण इसे अकाल नाशक फसल भी कहते हैं। तमिलनाडु एवं केरल के अलावा देश के सभी भागों में आलू की खेती होती है। आलू स्वास्थ्य के लिये हितकारी है। इससे विभिन्न प्रकार की खाद्यान्न सामग्री बनाई जाती है। इसका प्रत्येक कंद पोषक तत्वों का भण्डार है। आलू में 80-82 प्रतिशत पानी की मात्रा पायी जाती है। जहाँ इसमें विविध प्रकार के पोषक तत्व जैसे विटामिन सी, बी, मैंगनीज, कैल्शियम, फॉस्फोरस और आयरन पाये जाते हैं। वहीं आलू के अधिक सेवन से चर्बी बढ़ने की समस्या बढ़ जाती है। बाजार में आलू की माँग प्रायः बनी रहती है। आलू की सम्भावनाओं को देखते हुये आलू की खेती किसानों के लिए वरदान साबित हो रही है। संस्तुत किस्मों की समय से बुवाई, संतुलित मात्रा में उर्वरकों तथा कीटनाशकों के प्रयोग एवं उचित जल प्रबंधन से आलू उत्पादन में वृद्धि कर आय बढ़ाई जा सकती है।

आलू की खेती के लिये उपयुक्त मिट्टी, जलवायु एवं तापमान

• आलू की खेती हेतु बलुई दोमट मिट्टी या काली मिट्टी वाली भूमि उपयुक्त रहती है। आलू की खेती के लिए मिट्टी सक्त न हो जिससे आलू को बढ़ने में दिक्कत न हो। आलू की फसल की पैदावार विविध प्रकार की मिट्टी जिसका पी.एच. मान 6 से 8 के मध्य हो की जा सकता है। ऊसर रहित भूमि एवं खेत में उचित जल निकास आवश्यक है। आलू की अच्छी पैदावार हेतु बुवाई के पूर्व पलेवा लगाना चाहिये।

• आलू समशीतोष्ण और उष्णकटिबंधीय जलवायु की फसल है। यह खेती सर्दियों के मौसम में की जाती है परन्तु पाला इस खेती को अधिक हानि पहुँचाता है। ठंड जलवायु से कंद की पोषकता अधिक बढ़ जाती है। जबकि अधिक गर्म जलवायु भी इसकी खेती के लिये हानिकारक होती है।

• अधिक उत्पादन हेतु सामान्य तापमान उपयुक्त रहता है। सामान्यतौर पर आलू के बेहतर उत्पादन के लिये दिन का तापमान 25 से 30, रात्रि का 4-15 डिग्री सेल्सियस तथा कन्द बनते समय 18-20 डिग्री सेल्सियस अच्छा माना जाता है। 30 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापक्रम होने पर आलू की फसल में कन्द बनना बन्द हो जाता है। इस प्रकार कम या अधिक तापमान पौधों के लिये हानिकारक रहता है।

आलू की उन्नत किस्में

देश में अब तक लगभग 47 किस्मों का विकास विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों के लिए किया गया है।

अगेती किस्में: चंद्रमुखी, कुफरी अलंकार, कुफरी ख्याती, कुफरी पुखराज, कुफरी सूर्या, कुफरी अशोका पी 376 जे., जवाहर आदि अगेती प्रजाति हैं। यह किस्में 80 से 100 दिन में खुदाई हेतु तैयार हो जाती है।

मध्यम अवधि की किस्मः कुफरी लालिमा, कुफरी चिप्सोना-1, कुफरी बादशाह, कुफरी ज्योति, कुफरी सतलुज, कुफरी बहार, कुफरी सदाबहार आदि मध्यम समय वाली किस्में हैं, जो पकने में 90 से 110 दिनों में खुदाई के लिए तैयार हो जाती है।

देर से पकने वाली किस्मः कुफरी सिंधुरी, कुफरी फ्राईसोना, कुफरी बादशाह पकने में 110 से 120 दिनों का समय लेती हैं, जिससे इन्हें देर से पकने वाली किस्म कहते हैं।

संकर किस्मः जेआई 5857 या कुफरी सतुलज, जेएच 222 अथवा कुफरी जवाहर, जेएफ 5106 आदि शंकर किस्में हैं।

कन्दों की तैयारी, मात्रा एवं उपचार

शीतगृह में भण्डारित आलू को रोपने से 4-5 दिन पहले निकाल कर सामान्य ठण्डे स्थान पर रखें। रोपाई से पहले 24 से 48 घण्टे तक धूप से बचाकर छाया तथा हवादार स्थान में

रखें। रोग मुक्त संस्तुत एवं स्वस्थ अंकुरित कंद को प्रयोग में लायें। कंद का आकार 2.5 सेमी व्यास या 25 से 35 ग्राम के सबूत होने चाहिये। आलू की बुवाई में पंक्तियों से पंक्तियों के बीच में 50 सेंमी का अंतर और पौधों से पौधों में 20 से 25 सेमी. की दूरी उपयुक्त रहती है। सामान्य रूप से बुवाई हेतु 25 से 30 क्विंटल आलू के कंदों की प्रति हेक्टेयर आवश्यकता होती है।

आलू की रोपाई हल्के ठण्डा मौसम, अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक करें। बुवाई से पहले स्ट्रेप्टोसाइकिल 0.1 प्रतिशत अथवा कार्बेण्डाजिम 0.1 प्रतिशत के घोल से कंदों को उपचारित करके बुवाई करें या बुवाई के पूर्व कंदों को 2 ग्राम थायरम एवं 1 ग्राम बाविस्टिन प्रति लीटर पानी के धोल से 30 मिनट तक भिगाने के पश्चात छाया में सुखाकर रोपाई करें।

उर्वरक का प्रयोग

आलू मिट्टी की उपरी सतह से भोजन प्राप्त करती है। इसलिये आलू में जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों की अधिक मात्रा की जरूरत होती है। सामान्यतौर पर 180 किलोग्राम नत्रजन, 80 किलोग्राम फॉस्फोरस तथा 100 किलोग्राम पोटाश पर्याप्त मानी जाती है। आलू की अच्छी पैदावार के लिए सही मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग अति आवश्यक है। अधिक उर्वरकों का प्रयोग फसल के लिये हानिकारक होता है। यदि सही एवं संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग न किया जाये तो आलू की पैदावार कम होती है तथा आलू के कंद का आकार छोटा होता एवं गुणवत्ता भी अच्छी नहीं होती है। आलू की बुवाई से लगभग 15 दिनों पूर्व 100 से 110 क्विंटल देशी खाद का प्रयोग प्रति एकड़ की दर से करना चाहिये तत्पश्चात खेत की अच्छी तरह से जुताई करें। 100 किलोग्राम डी.ए.पी बुवाई के समय प्रति एकड़ की दर से प्रयोग में लायें। 75 किलोग्राम एम.ओ.पी का प्रयोग पोटाश की पूर्ति हेतु प्रति एकड़ की दर से करें। 150 किलोग्राम एन.पी.के खाद को प्रयोग में लाया जा सकता है क्योंकि इसमें पोटाश मौजूद रहता है। प्रति एकड़ 50 किलोग्राम कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर का प्रयोग करने से सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति होती है। अच्छे उत्पादन हेतु 40 किलोग्राम आर्गेनिक जैविक खाद का प्रयोग प्रति एकड़ की दर से करें।

आलू में पानी की आवश्यकता

आलू की खेती में सिंचाई का महत्वपूर्ण योगदान है। आलू में पानी देते समय यह ध्यान रखें की नालियों में पानी पूरा न भरें आलू में पानी तने तक नहीं पहुँचना चाहिये। आलू में पहला पानी 10 से 20 दिनों में, दूसरा 40 से 50 दिन व तीसरा पानी 60 से 70 दिनों में देना चाहिये। खुदाई करने के 10-15 दिनों पहले सिंचाई बंद कर दें। इससे आलू का छिलका कठोर हो जाता है एवं भण्डारण क्षमता बढ़ जाती है।

आलू की उपज

आलू की उन्नत तकनीक को अपनाकर औसतन 200 से 300 क्विंटल प्रति हेक्टेयर आलू की उपज प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार आलू एक कम लागत में अधिक उपज देने वाली फसल है। यदि सावधानीपूर्वक इसका उत्पादन किया जाये, बीज प्रस्तावित दर के हिसाब से लेना चाहिए अधिक बीज लेने से फसल की गुणवत्ता में कमी आने की सम्भावना रहती है। कीट रोग आदि का उपचार सही समय पर ही कर देना चाहिए। इससे अच्छा उत्पादन लेने में मदद मिलती है एवं फसल की गुणवत्ता भी बनी रहती है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

धान की उन्नत खेती

शाओन चक्रवर्ती एवं विवेक कश्यप
विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र, देवघर
पत्राचारकर्ता: shaonchakraborty1994@gmail.com

परिचय

धान दुनिया की 60% से अधिक आबादी और दक्षिण पूर्व एशिया के अधिकांश लोगों का मुख्य फसल है। विश्व में उगाया जाने वाला लगभग 90% धान एशिया में उत्पादित और उपभोग किया जाता है। यह आर्द्र उष्णकटिबंधीय जलवायु की फसल है और उपोष्णकटिबंधीय के आर्द्र क्षेत्रों में भी उगाई जाती है। उच्च तापमान, पर्याप्त वर्षा और सिंचाई सुविधाओं के साथ उच्च आर्द्रता के तहत, चावल को अलग-अलग उत्पादकता के साथ किसी भी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है।

उन्नत प्रभेद

उन्नत प्रभेद	फसल की अवधि (दिन)	औसत उपज (क्विंटल/हेक्टेयर)	बुआई की उपयुक्त समय एवं बीज दर
बिरसा धान -108	80	25	15 जून से 30 जून बीज दरः 80-100 कि.ग्रा /हे.
वन्दना	90	30	15 जून से 30 जून बीज दरः 80-100 कि.ग्रा /हे.
आई.आर.36	125	45	15 जून से 25 जून बीज दरः 40-50 कि.ग्रा /हे.
आई.आर.64	125	45	15 जून से 25 जून बीज दरः 40-50 कि.ग्रा /हे.
ललाट	125	45	15 जून से 25 जून बीज दरः 40-50 कि.ग्रा /हे.
स्वर्णा (एम.टी.यू -7029)	145	60	1जून से 25 जून बीज दरः 40-50 कि.ग्रा /हे.

उर्वरक का व्यवहार

1. बीज स्थली

एक सौ वर्गमीटर क्षेत्रफल की बीजस्थली के क्यारियों में निम्नलिखित मात्रा में खाद का प्रयोग करेः

- 1 किलो नाइट्रोजन, 1 किलो स्फूर एवं 1 किलो पोटाश
- बीज गिराने के 15-20 दिनों बाद 1 किलो नाइट्रोजन से बिचड़े को उपरिवेशन करे

2. रोपनी

- ऊँची भूमिः 40:20:20 कि.ग्रा. एन. पी .के. / हे.
- मध्यम भूमिः 80:40:20 कि.ग्रा. एन. पी .के. / हे.
- नीची भूमिः 120:60:40 कि.ग्रा. एन. पी .के. / हे.

50% नाइट्रोजन रोपनी के समय, 25% 3 सप्ताह के बाद और बाकी 25% नाइट्रोजन 6 सप्ताह के बाद प्रयोग करना आवश्यक है।

खरपतवार नियंत्रण

रोपाई के 5 से 7 दिनों के बाद ब्यूटाक्लोर 50 ईसी 2 लीटर/ हेक्टेयर की दर से डालना चाहिए और खेत में पानी का स्तर 5 से.मी. से अधिक नहीं होना चाहिए।

पौधा संरक्षण

कीट प्रबंधनः धान की फसल में विभिन्न के प्रकार के कीटों का प्रकोप रहता हैं, जो कि निम्न हैंः

1. सांढ़ा कीटः कीट की पिल्लू धान के बढ़वार बिन्दू में प्रवेश कर खाता है। कीट ग्रसित भाग (टिलर) में बालियाँ नही निकलती है।

प्रबंधन

- अवरोधी प्रभेद जैसे आई. आर. 36, ललाट का चयन करे।
- दानेदार कीटनाशाकार्टैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी.@ 25 कि.ग्रा./

हे. या फिप्रोनिल 0.3 जी. @ 25 कि.ग्रा/ हे. का प्रयोग रोपाई से तीन सप्ताह बाद साफ मौसम में करे।

2. तना छेदकः शिशु कीट पौधो के तना में छेद करके आन्तिरिक भाग को खाता है, जिससे बीच की पत्ती सूख जाती है। इसे 'डेड हार्ट' या मृत केंद्र कहते है। बालियों की अवस्था में कीट का आक्रमण होने पर सम्पूर्ण बालियाँ ही सूख जाती है, जिसको 'हवाइट इयर हेड' कहते है।

प्रबंधन

• दानेदार कीटनाशीकार्टैप हाइड्रोक्लोराइड 4जी. @25 कि.ग्रा./ हे. या फिप्रोनिल 0.3 जी. @25 कि.ग्रा/ हे., का प्रयोग रोपाई से तीन सप्ताह बाद साफ मौसम में करे।

3. रस चूसने वाला कीटः भूरा मधुआ, थ्रिप्स पत्तियों का रस चूसकर नुकसान पहुँचाते है, जिससे पौधो का वृद्धि रुक जाता है।

प्रबंधन

• इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. @ 1.5-2.0 मि.ली. / ली पानी में घोल बनाकर साफ़ मौसम में प्रयोग करे।

रोग प्रबंधन

1. झुलसा रोग या ब्लास्ट रोगः इस रोग में पत्तियों पर लगभग 1 से.मी. चौड़े नाव आकार के भूरे धब्बे दिखाई देते है। इनके बीच का भाग राख के रंग का होता है। बालियों के नीचे डंठल पर भूरा काला धब्बा दिखाई पड़ता है। काले भाग में धान के बाल टूट जाते है।

प्रबंधन

• कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करे ।

• कार्बेन्डाजिम 200 ग्राम प्रति 100 ली. पानी में घोलकर 10-15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करे।

2. जीवाणु पर्ण अंगमारीः इस रोग में पीले या पुआल के रंग के लहरदार धब्बे पत्तियों के एक या दोनों किनारों के सिरे से प्रारम्भ होकर नीचे की ओर बढ़ते है और धीरे-धीरे पत्तियाँ सूख जाती है।

प्रबंधन

• 6 घंटे तक बीज को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (100 पी.पी.एम.) में भिगोये।

• रोगग्रस्त खेत के पानी दूसरे खेत में बहने ना दे।

3. धड़ सड़नः इस रोग के लक्षण तना तथा पर्णछेदक पर पानी की सतह के पास काले भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देते है और पूरे तने को घेर लेते है। बालियाँ निकलते समय सभी कमजोर तने गिर जाते है, जिससे बालियाँ में आधे से अधिक दाने खाली रह जाते है।

प्रबंधन

• कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करे ।

• रोग के लक्षण दिखने पर 1 कि.ग्रा. इंडोफिल एम-45 को 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ की दर से साफ मौसम में प्रयोग करे।

4. आभासी कंड (फाल्स स्मट)ः रोगग्रस्त दानों के अन्दर कवक अंडाशय को एक बड़े कूट रूप में बदल देता है, पीले से लेकर संतरे के रंग के और और बाद में जैतूनी-हरा। रोगी दाने आकार में धान के दानों से दुगुने से भी बड़े हो जाते है।

प्रबंधन

• बाली निकलने से पहले टिल्ट 1 मि.ली./ली. पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ की दर से साफ मौसम में प्रयोग करे।

फसल की कटनी एवं भंडारण

80% धान की बालियाँ एवं पत्तियाँ के पकने पर फसल की कटनी करे। धान को अच्छे से सुखाकर 10-12% नमी रहने पर भंडार में रखे।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

अधिक उत्पादन हेतु डी.ए.पी., एन.पी.के. एवं सुपर फॉस्फेट उर्वरक का प्रयोग

गौरव शुक्ला[1] एवं खलील खांन[2]

[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन, मेजर एस.डी. सिंह पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, फर्रूखाबाद

[2]मृदा विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र, दलीप नगर, कानपुर

पत्राचारकर्ता: khankhalil64@gmail.com

परिचय

अधिक उत्पादन एवं टिकाऊ खेती के लिए भूमि की उर्वराशक्ति को उच्च स्तर पर बनाए रखना नितान्त आवश्यक है, जिसके लिए फसलों को संतुलित उर्वरकों की आपूर्ति आवश्यक है। फसलों की आवश्यकता के अनुरूप उर्वरकों का प्रयोग संतुलित रूप में न हो पाने के कारण मृदा की उर्वरता से संबंधित समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। फसलों द्वारा भूमि से पोषक तत्वों की अवशोषित मात्रा की तुलना में उर्वरकों द्वारा पोषक तत्वों की अपर्याप्त एवं असंतुलित पूर्ति के कारण मिट्टी की उर्वराशक्ति एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और फॉस्फोरस व पोटाश जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की भूमि में भारी कमी होने लगती है। इसके कारण यह आवश्यक हो गया है कि नत्रजन,फॉस्फोरस के साथ पोटाश का भी प्रयोग करें, अन्यथा अधिकतम उत्पादन नहीं मिल पायेगा एवं मृदा स्वास्थ्य में भी ह्रास होगा।

वर्तमान में नत्रजन का प्रयोग व्यापक रूप से हो रहा है किंतु फॉस्फोरस का इससे कम तथा पोटाश का प्रयोग नगण्य है, जो मृदा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। फसल द्वारा मृदा में उपलब्ध पोटाश का दोहन अधिकता से हो रहा है जबकि नत्रजन व फॉस्फोरस की तुलना में पोटाश का प्रयोग किसानों द्वारा आवश्यकता से कम होता है। अधिक उपज देने वाली सघन फसल पद्धतियों के अपनाने से नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस को पोटाश से संतुलित रखना आवश्यक है।

फॉस्फोरस की पूर्ति हेतु अधिकतर किसान डी.ए.पी. का प्रयोग करते हैं परंतु इसकी आपूर्ति एन.पी.के./सुपर फास्फेट से भी कर भरपूर उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। एन.पी.के. उर्वरक एक ऐसा मिश्रण उर्वरक है, जो खाद्यान्न, दलहनी, तिलहनी एवं अन्य फसलों के लिए आदर्श उर्वरक है, जो नत्रजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश की आवश्यक मात्रा की पूर्ति करने में सक्षम है। संयुक्त उर्वरक होने के कारण इसके प्रत्येक दाने में पोषक तत्वों की मात्रा वही होती है, जो बोरी पर लिखा होता है। संयुक्त उर्वरक इसलिए आवश्यक है ताकि प्रत्येक पौधे को समान मात्रा में पोषक तत्वों की पूर्ति की जा सके।

अतः किसान संतुलित उर्वरक हेतु प्राथमिकता के आधार पर एन.पी.के. एवं फॉस्फोरस की पूर्ति के लिए सिंगल सुपर फॉस्फेट उर्वरक का भी प्रयोग करें जो आर्थिक एवं तकनीकी दृष्टिकोण से सर्वथा उचित है, जिससे कम लागत में अधिक पैदावार लेने में सफलता मिले।

सर्वप्रथम मृदा परीक्षण करवाकर संस्तुत की गई मात्रा के अनुसार उर्वरकों को डालें यदि मृदा परीक्षण नहीं करवाए हैं तो उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का प्रयोग करें।

प्रचलित एन.पी./एन.पी.के./सुपर फॉस्फेट उर्वरक का विवरण

क्र.सं.	उर्वरक का नाम	तत्व प्रतिशत			
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश	सल्फर
1.	एन.पी.के. (15:15:15)	15	15	15	-
2.	एन.पी.के. (12:32:16)	12	32	16	-
3.	एन.पी.के. (10:26:26)	10	26	26	-
4.	एन.पी. मिश्रण (20:20:0:13)	20	20	0	13
5.	एन.पी. मिश्रण (20:20:0)	20	20	0	-
6.	सिंगल सुपर फॉस्फेट	-	16	-	-

फसलवार उर्वरकों की प्रयोग विधि निम्नानुसार हैं।

1. गेहूँः नत्रजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में बीच के 2, 3 सेमी. नीचे दी जाये। शेष नत्रजन की आधी मात्रा पहली सिंचाई, (20 से 25 दिन बाद) क्राउन रूट अवस्था पर तथा बची हुई मात्रा दूसरी सिंचाई के बाद देनी चाहिए। सीड कम फ़र्टिलाइज़र से बुवाई करना लाभदायक है।

2. जौः नत्रजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूड़ो में बीज के नीचे डाले तथा बाद में नत्रजन की शेष आधी मात्रा पहली सिंचाई के बाद ओट आने पर टॉपड्रेसिंग करें।

3. तिलहनी फसलेंः सिंचित क्षेत्रों में नत्रजन की आधी मात्रा व फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय बीज से 2-3 सेमी. नीचे प्रयोग करनी चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा पहली सिंचाई (बुवाई के 25-30 दिनों बाद) टॉप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए।

4. दलहनी फसलेंः उर्वरक की संपूर्ण मात्रा का प्रयोग बुवाई के समय कूड़ों में बीज के 2-3 सेमी. नीचे करना चाहिए। 20-30 किग्रा. गंधक का प्रयोग प्रति हेक्टेयर की दर से करना लाभकारी है।

5. बैंगन/टमाटरः अंतिम जुताई के समय नत्रजन की एक तिहाई मात्रा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा को खेत में मिलाना चाहिए। नत्रजन की शेष दो तिहाई मात्रा ड्रेसिंग के रूप में 25-30 दिन एव 45-50 दिन बाद देना चाहिए।

6. आलूः आलू में नत्रजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस व पोटाश की पूर्ण मात्रा खेत में मिला देनी चाहिए। शेष नत्रजन दो तिहाई आधी मात्रा का बुआई के 35 दिन बाद कूड़ों में डालकर खुरपी या ट्रैक्टर चलित रिजर से मिट्टी चढ़ा दे।

पौधों/फसलों को 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है इन 17 पोषक तत्वों में कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन प्रकृति से मिलते हैं शेष 14 तत्व जमीन से मिलते हैं। इन 14 तत्वों में नाइट्रोजन फॉस्फोरस व पोटाश की ज्यादा मात्रा पौधों को जरूरत होती है। इसलिए यह मुख्य पोषक तत्व कहलाते हैं। इन्हीं मुख्य पोषक तत्वों को हम रासायनिक उर्वरक यथा यूरिया, डी.ए.पी, एन.पी.के., म्यूरेट ऑफ पोटाश, सिंगल सुपर फॉस्फेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट, आदि से देते हैं। यह रासायनिक उर्वरक कितनी-कितनी मात्रा में व कैसे एवं कब फसलों में दिए जाएं, जिससे ज्यादा से ज्यादा शुद्ध लाभ मिल सके। इसका सबसे अच्छा तरीका मिट्टी की जाँच कराकर उर्वरकों की मात्रा का पता लगाना चाहिए, जिससे फसलों में संतुलित उर्वरक प्रबन्धन हो व कम लागत में गुणवत्तापरक एवं अधिक उत्पादन प्राप्त हो।

क्र.सं.	फसल का नाम	मुख्य पोषक तत्वों की आवश्यकता किग्रा/हे.		
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
1.	गेहूँ	150	60	40
2.	जौ (सिंचित)	60	30	20
3.	तोरिया	100	50	40
4.	राई/सरसों	120	40	40
5.	असली (सिंचित)	100	60	40
6.	चना/मसूर	20	60	20
7.	मटर	20	60	40
8.	टमाटर/बैंगन	50	60	60
9.	फूल गोभी/पत्ता गोभी	20	60	60
10.	भिण्डी	80	40	40
11.	मटर (सब्जी)	50	50	40
12.	आलू	180	100	100

निष्कर्ष

वर्तमान समय में मिट्टी में जीवांश कार्बन की मात्रा सामान्य से बहुत कम है इसलिए किसान भाइयों को केवल नत्रजन धारी उर्वरक ही नहीं अपितु फास्फोरस एवं पोटाश वाले उर्वरकों का भी प्रयोग करना चाहिए ।(करें) जिससे संतुलित उर्वरक प्रबंधन हो और लागत की अपेक्षा उत्पादन अधिक प्राप्त हो साथी मृदा स्वास्थ्य भी बनी रहे

❖❖

ISSN No. 2583-3316

विदेशी पत्तेदार सब्जी (लेट्टुस) की खेती

आनंद साहिल[1] एवं शीतल रावत[2]

[1]युवा पेशेवर 2- आई.सी.ए.आर. केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, वेजलपुर; गोधरा

[2]युवापेशेवर-2के.शु.बा.सं., बीकानेर

पत्राचारकर्ता: anandmaharana19981998@gmail.com

परिचय

लेट्टुस एक पत्तेदार विदेशी सब्जी है, जिसका वैज्ञानिक नाम लैक्टुका सैटिवा एल है, जो कि एस्टरेसियी कुल के अंतर्गत आता है। यह एक महत्वपूर्ण पत्तेदार सब्जी है। इसका उपयोग मुख्यतः सलाद के रूप मे किया जाता है। इसकी उत्पति स्थल ईस्टर्न मेडीटेरेनिन क्षेत्र को माना जाता है। समान्यतः इसकी खेती विदेशो व भारत मे ठंडे प्रदेशो मे बड़े पैमाने पर की जाती है। भारत मे इसकी खेती का उत्पादन क्षेत्र दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है, क्योकि आज मानव की बदलती पसंदीदा खाने और लेट्टुस मे पाये जाने वाले महत्वपूर्ण पौष्टिक और औषधीय गुणो की विस्तारपूर्वक जानकारी मिलने के पश्चात किसान भाई बढ़-चढ़ कर खेती करना शुरू कर रहे है। इसकी कच्ची पत्तियो का उपयोग गाजर, मूली चुकंदर व प्याज की तरह सलाद के रूप मे किया जाता है। सामान्य रूप से इसकी खेती किचन गार्डनिंग के रुप मे भी की जा रही है। यह एक रबी के मौसम मे उगाई जाने वाली फसल है क्योकि यह उच्च तापमान सहन करने मे ंअसक्षम है। इसकी खेती समान्यतः ठंड प्रदेशो मे की जा रही थी परंतु अब इसकी खेती आसानी से उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशो जैसे लखनऊ, बिहार आदि मे रबी के मौसम मे सफलतापूर्वक की जा रही है। पत्तेदार सब्जियों के रूप में लेट्टुस की माँग भी हमारे देश मे आजकल काफी हो रही है, जिससे किसान भाई को इसकी मूल्य भी अच्छी प्राप्त हो जाती है। पत्तेदार सब्जियाँ के सेवन से आधिक मात्रा मे खनिज पदार्थ और विटामिन्स मिलते है। लेट्टुस मानव पोषण मे महत्वपूर्ण भूमिका और स्वास्थ्य लाभ का आंकलन किया गया क्योंकि यह विटामिन 'ए', विटामिन 'सी', फेनोलिक कम्पाउण्ड और फाइबर का एक अच्छा श्रोत है। यह खनिज तत्वो जैसे-कैल्शियम, लौह, मैग्नीशियम,पोटैशियम और सोडियम का भी एक अच्छा स्रोत है। यह अपने औषधीय गुण के लिए भी मशहूर है और इसके उपयोग से हृदयवाहिनी रोग के जोखिम से, ब्लड प्रेशर को भी नियमित रखता है, सूजनरोधी, शरीर के वजन कम करने मे और मस्तिष्क स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है। लैकटुकाविरोसा से सूखे लेटेक्स 'लकटुकरीउम' प्राप्त होता है, जिसका उपयोग समान्यतः नींद लाने के लिए दवाइयों को बनाने में किया जाता है।

लेट्टुस के पोषक मान

पोषक तत्व मात्रा	100/ ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	2.9 ग्राम
प्रोटीन	1.4 ग्राम
फाइबर	1.3ग्राम
वसा	0.2ग्राम
विटामिन'ए'	1650 आई यू
विटामिन'सी'	9.2मिलीग्राम
सोडियम	28 मिलीग्राम
पोटैशियम	194 मिलीग्राम
कैल्शियम	50मिलीग्राम
लौह	4प्रतिशत
मैग्नीशियम	3प्रतिशत

जलवायु व भूमि

लेट्टुस की खेती के लिए सबसे अच्छी जलवायु समशीतोष्ण जलवायु मानी जाती है। समशीतोष्ण जलवायु मे वसंतमाह की नम मिट्टी लेट्टुस की खेती के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। गर्म क्षेत्रों जहाँ वातावरण मे नमी हो और सर्दी होती हो, वहाँ इसकी खेती रबी मौसम मे करने से अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है। इसकी खेती हेतु 20-25 डिग्री तापमान उपयुक्त माना जाता है।

लेट्टुस की खेती के लिए मृदा ना तो अधिक क्षारीय और ना ही अम्लीय हो। इसकी अच्छी उपज के लिए उचित जल निकास वाली जीवांशयुक्त रेतीली या दोमट भूमि सर्वोत्तम मानी गई है। यह अधिक पानी के ठ्हराव को सहन नहीं कर पाती है। इसीलिए भूमि को समतल करके उचित जल निकास की व्यवस्था हो वहा इसकी खेती करने से प्रति क्षेत्र उपज अच्छी मिलती है।

प्रजातियाँ

लेट्टुस की अधिक उत्पादन के लिए अच्छी किस्मों का चयन अत्यंत आवश्यक है। किस्मे मुख्यतः क्षेत्रीय वातावरण के आनुसार लगाने से इसकी पैदावार मे वृद्धि होती है। प्रजातियाँ जैसे-टैंगो, बिंगो, ग्रैंडरैपिड्स, ब्लैकरोज, समर स्टार इत्यादि कुछ प्रमुख है।

बीज बुवाई का सही समय

समान्यतः लेट्टुस के बीज की बुवाई उपोष्णकटिबंधीय प्रदेशो मे मध्य अक्टूबर से नवम्बर माह मे 500 ग्रा. प्रति हे. की दर से 10 मी. लंबी, 2.5 मी॰ चौड़ीं और 20 से.मी. ऊँची रैज्ड नर्सरी बेड तैयार करके उस पर कम्पोस्ट का प्रयोग करके करते है। बीज की बुवाई 2.5-3 सेमी. गहराई तक करते है। बीज बुवाई के पश्चात भुरभुरी मिट्टी या कम्पोस्ट से बीज को ढक देते है, तत्पश्चात इसकी हल्की सिंचाई किया जाती है। इसके अलावा बीजो की बुवाई पॉट ट्रे मे कोकोपिट, वर्मिक्युलाइट एव परलाइट का क्रमशः 3,1 एवं 1 के अनुपात मे मिलाकर भर देना चाहिए। फिर 1-1.5 सेमी गहराई तक बुवाई करना चाहिए। समान्यतः आंकुरण एक सप्ताह तक आ जाते है, इसकी हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। जब पौधा 3-4 सप्ताह का हो जाए तो इन्हे खेतों मे रोप देना चाहिए।

भूमि की तैयारी एवं उर्वरक

लेट्टुस की खेती के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटहल से करने के बाद 3 जुताई कल्टीवेटर से करके पाटा लगा देना चाहिए। खेत को ढेला रहित कर के भूरभूरा कर लेने से खेतो मे वायु संचार और जल धारण क्षमता बनी रहती है। सलाद के लिए गोबर की खाद 15-20 टन प्रति हे. की दर से बिखेर कर मिट्टी मे मिला देना चाहिए। पौधों की अच्छी बढ़वार और आधिक उत्पादन के लिए उर्वरक मुख्यतः मिट्टी जाँच के पश्चात ही देना चाहिए। समान्यतः उर्वरक नाइट्रोजन 90 किलोग्राम, फास्फेट 40 किलोग्राम और पोटाश 60 किलोग्राम प्रति हे. की दर से खेतों मे देना चाहिए। जब नर्सरी मे पौधे 30-35 दिन के हो एवं 3-4 पत्तियाँ आ जाए तो 40x30 से. मी. की दूरी पर खेतों मे लगा देना चाहिए और अपनी स्वेछा के अनुसार क्यारियाँ बना देना चाहिए ताकि पानी और खाद देने मे कोई परेशानी न हो सके तथा आधिक पानी भी आसानी से बाहर निकाल सके।

पौध रोपण का समय

लेट्टुस के पौधे को खेतो मे लगाने का समय सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत मे इसकी खेती उपोष्णकटिबंधीय प्रदेशो में समान्यतः नवम्बर से जनवरी माह तक की जा सकती है। जब वातावरण का तापमान 20-25^{0} से. रहता है, जो कि इसकी खेती के लिए उपर्युक्त माना जाता है।

सिंचाई

इसकी रोपाई के बाद नमी के आनुसार सिंचाई करनी चाहिए यदि आवश्यकता हो तो 8-10 दिन के अंदर पहली सिंचाई करनी चाहिए। ठंडे वातावरण मे नमी की मात्रा ज्यादा होती है इसलिऐ सिंचाई पौधों की जल माँग और वर्षा ऋतु के आनुसार ही सिंचाई की जानी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

इसकी रोपाई के पश्चात कभी-कभी खरपतवार निकल आते है, इसके नियंत्रण हेतु समय पर निराई-गुड़ाई करने से उत्पादन एवं उत्पादकता मे बढ़ोतरी होती है और कीटो एवं बीमारियों का प्रकोप भी कम रहता है। समान्यतः इसकी रोपाई के 20-30 दिन तक निराई-गुड़ाई कर के खरपतवार पर नियंत्रण कर लेना चाहिए।

कीट नियंत्रण

चेपाः चेपा का यह कीट भूरे रंग के होते है और पत्तो पर बैठकर पौधों का रस चूसते है। इस कीट का प्रकोप होते ही नीम के तेल का प्रयोग करके इससे छुटकारा पा सकते है। **माँहुः** इस कीट के प्रकोप से भी पौधों का विकास सही तरीके से नहीं हो पाता है। अतः इसके नियंत्रण के लिए नीम का तेल या कोई कीटनाशी जैसे इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल की हल्की मात्रा प्रयोग करके इस पर नियंत्रण कर सकते है। **धब्बा रोग और चितकबरा रोगः** यह बीज जनित रोग है इसीलिए इसकी खेती करने के लिए इस रोग रहित बीज का प्रयोग किया जाना चाहिए।

डाउनी फफूँदीः यह रोग लेट्टुस का सबसे भयानक बीमारी है। इसका प्रकोप बढ़न से फसल को काफी नुकसान होता है। इसीलिए प्रति रोधी प्रजातियों का चयन कर ही फसल की बुवाई करे। यदि फसल पर इसका प्रकोप हो गया है तो फफूँदनाशक जैसे मनेब का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी से इसका उपचार किया जा सकता है।

फसल की कटाई

फसलों की कटाई मुख्यतः किस्मों, वातावरण एवं पौध रोपण का समय इत्यादि पर निर्भर करता है। पौध लगाने के 55-60 दिन के बाद इसकी कटाई शुरू कर दी जाती है इसके कोमल पत्तों की बाजार मे काफी माँग है। फसल की कटाई हमेशा सुबह के समय करनी चाहिए ताकि पत्तियाँ ताजी रहे और बाजार मे इसकी उचित कीमत मिल सके। इसकी उपज मुख्यतः फसल की किस्म, जलवायु एवं उचित प्रबंधन पर निर्भर करती

है। समान्यतः इसका उत्पादन लगभग 220-240 क्विंटल प्रति हे. तक होता है। किसान भाई इसकी खेती करके काफी आमदनी कर सकते है, जिससे उनकी आय मे बढ़ोतरी आसानी से की जा सकती है।

निष्कर्ष

विदेशी सब्जियों मे लेट्टुस का नाम भी अग्रसर है। उपरोक्त विधि से इसकी खेती करने से एवं इसके महत्वपूर्ण गुणो के कारण प्रति व्यक्ति प्रति इकाई क्षेत्रों से अधिक से अधिक आमदनी कर सकते है। यह एक विदेशी सब्जी है। इसीलिए इसका बाजार मे भी माँग काफी बढ़ता जा रहा है, इससे इसकी बाजारू मूल्य भी अन्य सब्जियों की तुलना मे अधिक मिल जाता है। अतः ऐसे सब्जियों की खेती हर एक किसान भाई को करना चाहिए।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

भारतीय कृषि में ड्रोन तकनीक

कुमारी अंजना गुप्ता एवं आर. एल. राऊत
कृषि विज्ञान केंद्र, बालाघाट
पत्राचारकर्ता: blogger.sp2020@gmail.com

परिचय

आधिकारिक सांख्यिकी के अनुसार, सेवा क्षेत्र भारत के जीडीपी का सबसे बड़ा हिस्सा बनाता है। दुनिया का सबसे बड़ा पुल्स, दूध, चावल, गेहूँ, गन्ना, मसाले आदि का उत्पादक हमारा देश है। इनके कृषि उद्योग में शामिल होने से इनका योगदान अर्थव्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण है। भारत के जीडीपी का 18%, या ग्रॉस डोमेस्टिक प्रोडक्ट, कृषि क्षेत्र से आता है। यह करीब 58% जनसंख्या के लिए मुख्य आय का स्रोत माना जाता है, मुख्यतः गाँवों में।

कुंजी

- जीडीपी
- यूएवी
- आरजीबी
- आरओआई
- डिजिटल स्काई प्लेटफ़ॉर्म

भारतीय कृषि जीडीपी का सहारा करती है, हालांकि हमारे देश को इस उद्योग में पूर्णता से उत्पन्नता और कुशलता में वृद्धि करने की जरूरत है। कई पहलुओं और मुद्दों को पहचाना, समर्थित और समाधानों के साथ संबोधित करने की आवश्यकता है। वर्तमान में विभिन्न महत्वपूर्ण कृषि कार्यों के लिए अनुचित तकनीक का उपयोग किया जा रहा है, जैसे कि फसलों का मॉनिटरिंग, जल सिंचाई, कीटनाशक लागू करना, और कई अन्य। निवेश का मुआवजा (आरओआई) अक्सर कम हो जाता है क्योंकि साधारित संसाधन, मौसम की स्थिति के आधार पर आवंटित नहीं किए जाते हैं, या पूरी तरह से उपयोग नहीं किए जाते हैं।

इन अडचणों ने तकनीकी विकास के लिए कई अवसरों को संभावित बना दिया है। तकनीक का अपने संस्करण के पहले ही समय से कृषि उद्योग पर सकारात्मक प्रभाव हमेशा रहा है। जब सरकारें और राष्ट्रव्यापी व्यापार स्थानीय स्तर पर भोजन सुरक्षा और पर्यावरण के क्षतिग्रस्त होने, प्रदूषण और जल संकट के प्रभावों की महत्वपूर्णता को समझने लगे, तो कुछ समस्याओं को सामना करने की आवश्यकता और बढ गई।

कृषि में ड्रोन की उपयोगिता

कृषि समुदाय के भविष्य के रूप में और इसकी विविधता के कारण, ड्रोन्स ने अधिकांश उद्योग के ध्यान को प्राप्त किया है। इन्हें पहले सैन्य द्वारा उपयोग किया गया था। तथापि, जैसे ही अन्य उद्योग ने यह जाना कि इनमें कितने उपयोग हैं, उनमें शीघ्रता से स्वीकृति हुई।

भारतीय कृषि में ड्रोन की भूमिका

ड्रोन किसानों को अन्य रोकटों को पार करने और सामान्य प्रदर्शन में बड़ी रूप से लाभ प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। कुल मिलाकर कृषि ड्रोन्स के लिए बाजार $1.3 बिलियन तक बढ़ गया है और यूएवी (अनमैन्ड एरियल व्हीकल्स) ने पारंपरिक खेती तंतुता और कमी की छायाएँ भर दी हैं। ड्रोन तकनीक का उपयोग सभी अस्पष्टता और अनुमान को समाप्त करने के लिए किया जा रहा है और बजाय इसके स्थिर और विश्वसनीय जानकारी पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है।

खेती में मौसम, मृदा की स्थिति और तापमान जैसे बाह्य परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं। कृषि ड्रोन की मदद से किसान को विशिष्ट परिस्थितियों का सामना करने और बुद्धिमान निर्णय लेने की क्षमता मिलती है। एकत्रित की गई जानकारी का उपयोग फसल स्वास्थ्य, फसल उपचार, फसल स्काउटिंग, सिंचाई, खेत मृदा विश्लेषण और फसल के क्षति मूल्यांकन को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। ड्रोन सर्वेक्षण समय और खर्च को कम करता है और फसल की उपज को बढ़ाता है।

2050 तक, अनुसंधानकर्ताओं का अनुमान है कि पृथ्वी पर 9 अरब लोग होंगे। इसके अलावा, यह दावा किया गया है कि कृषि उपभोक्ता समकक्ष में लगभग 70% के साथ समवर्धन होगा। इसके लाभ के कारण ड्रोन तकनीक, जो सार्थक बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग और दूरस्थ अनुभूति क्षमताएँ शामिल करती है, बढ़ती हुई है। इसके ऑनलाइन 'डिजिटल स्काई प्लेटफ़ॉर्म' के साथ, केंद्रीय सरकार ने अनमैन्ड एरियल व्हीकल्स (यूएवी), मशीन लर्निंग और कृत्रिम बुद्धिमत्ता की महत्वपूर्णता को स्वीकृत किया है। भारतीय ड्रोन कंपनियों ने इस अवसर का उपयोग करने के लिए अपनी तकनीकी क्षमताओं का उपयोग किया है।

ड्रोन की तकनीक

अगर किसी ने पूरी तरह से ड्रोन की गुणधर्मों को समझ लिया

है, तो उन्हें केवल उस समय तकनीकी विवरण का पता चलता है, जब उन्होंने समझा है कि कृषि ड्रोन्स के गुणधर्म क्या होते हैं। ड्रोन्स के साथ सामान्यतः नेविगेशन सिस्टम, जीपीएस, विभिन्न सेंसर, उच्च गुणवत्ता वाले कैमरे, प्रोग्रामेबल नियंत्रक, और स्वयंसेवी ड्रोन्स के लिए उपकरण आमतौर से शामिल होते हैं। इस क्षेत्र में एक ऐसा प्रसिद्ध ड्रोन DJI है। वर्तमान में अधिकांश किसान अपने खेतों के लिए एक बुनियादी प्रबंधन उपकरण के रूप में सैटेलाइट इमेजिंग का उपयोग करते हैं। उन्मुक्त एयरियल व्हीकल्स (यूएवी) उपग्रहों से और अधिक सटीक डेटा प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने फिर जुटाई गई डेटा को प्रसंस्कृत करने के लिए कृषि प्रौद्योगिकी उपकरणों का उपयोग किया और उपयुक्त ज्ञान प्रदान किया।

कृषि ड्रोन से डेटा को जुटाने की प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों में होता है:

1. क्षेत्र का विश्लेषण: इससे यह इस क्षेत्र को सूचित करता है। इस परिणामस्वरूप, सीमा स्थिति को स्थापित करना, क्षेत्र का विश्लेषण करना और अंत में तकनीकी जीपीएस डेटा को ड्रोन के नेविगेशन सिस्टम में स्थापित करना पहले चरण का हिस्सा है।

2. स्वयंसेवी ड्रोन का उपयोग: यह उन्मुक्त एयरियल व्हीकल्स (यूएवी) स्वयंसेवी होते हैं, इसलिए उन्होंने आवश्यक डेटा जुटाने के लिए अपनी पूर्व मौजूदा प्रणाली में उड़ानों को दर्ज करना है।

3. डेटा अपलोड करना: सभी आवश्यक डेटा को एकत्र करने के बाद, जैसे कि मल्टीस्पेक्ट्रल और आरजीबी सेंसर का उपयोग करके, इसे और विश्लेषण और व्याख्या के लिए विभिन्न उपकरणों का उपयोग किया जाता है।

परिणाम

डेटा जुटाने के बाद, उन्होंने इसे ऐसे स्वरूपित किया है कि किसान इसे आसानी से समझ सकें, जिससे वह अधिकतम खेती की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। फोटोग्रामेट्री या 3डी मैपिंग का उपयोग करके आप बहुत अधिक प्राप्त डेटा को प्रस्तुत कर सकते हैं।

किसानी में ड्रोन तकनीक का उपयोग

सिंचाई की मॉनिटरिंग: ड्रोन्स सहारा लेकर हाइपर-स्पेक्ट्रल, थर्मल, या मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर्स का उपयोग करके विक्षोभित क्षेत्रों की पहचान कर सकते हैं, जो की बहुत सूखे हैं या किसान को सुधार की आवश्यकता है। ड्रोन सर्वेक्षण सिंचाई की मॉनिटरिंग में वन्य गणनाओं को प्रदान करता है ताकि फसलों के स्वास्थ्य और उत्सर्जित ऊर्जा का माप किया जा सके, जिससे पानी की कुशलता में सुधार हो और सिंचाई में संभावित जमाव/लीक का पता लग सके।

फसल स्वास्थ्य निगरानी और मॉनिटरिंग: पौधों की स्थिति का मॉनिटरिंग और बैक्टीरियल/फंगल समस्याओं की पहचान प्रारंभिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। कृषि में उपयुक्त ड्रोन्स पौधों की यह पहचान कर सकते हैं कि कौन से पौधे एनआईआरएस और हरित प्रकाश की विभिन्न मात्राएं प्रतिबिम्बित करते हैं। इस डेटा के सहारे क्रॉप स्वास्थ्य की निगरानी की जा सकती है, और त्वरित मॉनिटरिंग और दोष की पहचान से फसलें बचाई जा सकती हैं। फसल की हानि के मामले में, किसान बीमा का सटीक क्षति दस्तावेज़ प्रदान कर सकता है।

फसल की हानि का मूल्यांकन: कृषि ड्रोन्स जो मल्टीस्पेक्ट्रल और आरजीबी सेंसर्स से युक्त हैं, क्षेत्रों में कीट, बीमारियों और खेत क्षेत्रों की पहचान कर सकते हैं। इस जानकारी के साथ, इन्फेस्टेशन का समापन करने के लिए आवश्यक रसायनों की सटीक मात्रा को निर्धारित करना संभव है, जिससे किसान को उत्पन्न खर्चों में कमी होती है।

खेत मिट्टी की जाँच: किसान ड्रोन सर्वेक्षण के साथ अपने भूमि की मिट्टी की विशेषताओं के बारे में और भी जान सकते हैं। मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर्स द्वारा जुटाए गए डेटा से गहरी खेत मिट्टी की विश्लेषण, सिंचाई, नाइट्रोजन स्तर प्रबंधन और बीज रोपण पैटर्न जैसे सभी क्षेत्रों को लाभ हो सकता है। किसान सटीक फोटोग्रामेट्रिक/3डी मैपिंग के सहारे अपने मिट्टी की स्थिति का विस्तृत विश्लेषण कर सकते हैं।

रोपण: भारतीय ड्रोन कंपनियों ने उनके ड्रोन्स से बीज, पॉड और अन्य आवश्यक पोषण को पृथ्वी में स्प्रे करने के लिए सिस्टम विकसित किया है। यह विधि एक सुरक्षितता और प्रदक्षिणता को बढ़ाती है और खर्च को 85% से अधिक कम करती है।

पशु ट्रैकिंग: किसान ड्रोन सर्वेक्षण के सहारे अपनी फसलों के साथ ही अपने पशुओं के चलन का भी ट्रैकिंग कर सकते हैं। थर्मल सेंसर तकनीक का उपयोग करके जानवरों को स्थानांतरित किया जा सकता है और बीमारियों या चोटों का पता लगाया जा सकता है। ड्रोन्स द्वारा यह कार्य सफलतापूर्वक किया जा सकता है, जिससे पौधों के विकास में काफी बढ़ोतरी भी होती हैं।

ड्रोन तकनीक के लाभ

नई तकनीक के विकसकों द्वारा प्रस्तुत किए जाने के साथ हर दिन इसके वाणिज्यिक अनुप्रयोग बढ़ते जा रहे हैं। सरकार ने ड्रोन उपयोग नियमों को कमजोर कर रही है और उद्यमियों को नवीनतम अविष्कारों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया है। ड्रोन सर्वेक्षण समझदार हो रहे हैं और इसमें सुरक्षित कृषि में काफी सारे लाभ हैं। यहां कुछ हैं:

1. वृद्धि हुई उत्पादनः किसान समृद्धि योजना, पूर्ण कृषि स्वास्थ्य मॉनिटरिंग, भूमि स्वास्थ्य की अधिक समझ और पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति उत्तर देने के माध्यम से उनकी उत्पादन क्षमता में विस्तार कर सकता है।

2. कुशल और अनुकूल तकनीकः ड्रोन का उपयोग किसानों को उनकी फसलों पर नियमित अपडेट प्रदान करके उन्हें और भी प्रभावी कृषि प्रथाओं का विकास करने में मदद करता है। वे संसाधनों को कुशलता से कारगरता से विभाजित कर सकते हैं और बदलते मौसम पर अनुकूलित कर सकते हैं।

3. किसानों की अधिक सुरक्षाः ड्रोन का उपयोग कठिनाई भरे क्षेत्रों, प्रदूषित क्षेत्रों, ऊंची फसलों और बिजली की लाइन्स में कीटनाशक स्प्रे करने के लिए किसानों के लिए सुरक्षित और अधिक कारगर है। इसके अलावा, यह किसानों को फसल स्प्रे करने से बचाने में मदद करता है, जिससे भूमि संदूषण और रासायनिक विषाक्ता कम होती है।

4. तेज निर्णय लेने के लिए 10 गुना तेज डेटाः ड्रोन सर्वेक्षण किसानों को विश्वसनीय डेटा प्रोसेसिंग के साथ समर्थन करता है जिससे उन्हें क्रॉप स्काउटिंग में लगाए गए समय को बचाने की अनुमति होती है। ड्रोन के विभिन्न सेंसर्स किसानों को खेत के पूरे क्षेत्र से डेटा एकत्र करने और विश्लेषण करने की संभावना है। जानकारी विकित कृषि के लिए अधिक सटीक और व्यापक कृषि प्रबंधन प्रणाली संभावना है जिसमें ड्रोन को अतिरिक्त कृषि के लिए कई सेंसर्स से लैस किया जा सकता है।

5. सामग्री की कमीः कृषि-ड्रोन्स से सारे सामग्री, जैसे कि उर्वरक, पानी, बीज और कीटनाशक, का सर्वोत्तम उपयोग करने की अनुमति है।

6. 99% सटीकता दरः ड्रोन सर्वेक्षण किसानों को भूमि के नक्शा बनाने, भूमि के निश्चित क्षेत्र की गणना करने और विभिन्न प्रकार की फसलों को बाँटने में मदद करता है, और इसमें 99% की सटीकता होती है।

7. बीमा दावों के लिए उपयुक्तः किसान ड्रोन से प्राप्त जानकारी का उपयोग करके कृषि बीमा दावों को करते हैं जब किसी हानि की स्थिति में। यदि उन्हें बीमा है, तो उन्हें भूमि से जुड़े जोखिम और हानियों का विश्लेषण करना होता है।

8. बीमा कंपनियों के लिए सहारा डेटाः कृषि बीमा उद्योग विश्वसनीय और कुशल डेटा एकत्र करने के लिए कृषि-ड्रोन्स का उपयोग करता है। किसानों को देने के लिए वित्तीय मुआवजा की सटीक गणना के लिए वे उठाए गए हानियों को रिकॉर्ड करते हैं।

निष्कर्ष

भारतीय कृषि समुदाय का भविष्य, जैसा पहले कहा गया था, निर्विवाद कृषि ड्रोन तकनीक है। यह अनगिनत तरीकों में पारंपरिक खेती प्रथाओं को बदल सकता है। हालांकि यह तकनीक पहले सीखने में अधिक कठिन है, एक बार जब सीखा जाता है, यह त्वरित परिणाम पैदा करता है। किसानों को पूर्ण प्रक्रिया को समझना होगा। उद्देश्य तय करना, सॉफ़्टवेयर और ड्रोन के बीच संतुलन स्थापित करना, और इस प्रकार के तकनीक का उपयोग करने के मौलिक सिद्धांतों को समझना कठिन होगा। विश्वसनीय डेटा इकट्ठा करने के लिए किसानों को निर्दिष्ट प्रशिक्षण या ड्रोन उद्योग के बाहरी पेशेवरों के साथ सहयोग की आवश्यकता होगी। प्रायः हर व्यापार में, ड्रोन्स ने डेटा जमा करने का तरीका कैसे बदल दिया है। आने वाले वर्षों में, वे केवल सुधारते जाएंगे।

संदर्भ

- https://onlinelibrary.wiley.com/doi/abs/10.1002/9781394168002.ch14](https://onlinelibrary.wiley.com/doi/abs/10.1002/9781394168002.ch14)
- https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1877050918310081](https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1877050918310081)
- https://acsess.onlinelibrary.wiley.com/doi/abs/10.4195/nse2015.04.0772](https://acsess. onlinelibrary.wiley. com/doi/abs/10.4195/ nse2015. 04.0772)
- https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1877050918310081#cebibsec1](https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S18770509 18 310081# cebibsec1)

❖❖

ISSN No. 2583-3316

रासायनिक उर्वरकों का मृदा एवं फसलों की गुणवत्ता पर प्रभाव

संजीव कुमार बन्याल[1]*, दीपा शर्मा[2], निखिल ठाकुर[3] एवं विनीत शर्मा[4]

[1]फल विज्ञान विभाग, [2,3एवं 4]सब्जी विज्ञान विभाग

डॉ. यशवन्त सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, औद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर

पत्राचारकर्ता: skbanyal@gmail.com

परिचय

हमारे देश की बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य सामग्री की माँग में भी काफी वृद्धि हुई है, जिससे हमारे प्राकृतिक संसाधनों का भी लगातार दोहन होता जा रहा है। यह सर्वविदित है कि जिस तकनीक के चलते हरित क्रान्ति आई उसमें संकर बीजों, रासायनिक खादों एवं अन्य कृषि रसायनों का प्रमुख योगदान रहा है। शुरू-शुरू में इनका उपयोग संतुलित मात्रा में किया गया किन्तु बाद में अधिक ''अन्न उपजाओ'' की नीति के तहत अन्धाधुन्ध उपयोग होने लगा। नतीजा यह हुआ कि भूमि, जल, वायु एवं भोजन प्रदूषण से ग्रस्त होने लगा और उत्पादन क्षमता घटने लगी। खेती में पुनः टिकाऊपन लाने और इसे लाभदायक व्यवसाय बनाने के लिए रासायनिक उर्वरकों का संतुलित मात्रा में उपयोग करना अतिआवश्यक हो गया है।

रासायनिकी उर्वरकों का उपयोग कृषि में एक प्रमुख तकनीक है, जिससे फसलों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। उर्वरक फसलों को पोषक तत्व प्रदान करते हैं, जिससे उनका विकास सही ढंग से होता है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है परन्तु रासायनिक उर्वरकों के अत्याधिक प्रयोग से मिट्टी तथा फसलों की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। साथ ही प्राकृतिक परिस्थितियों जैसे जल, वायु व वातावरण पर भी बुरा असर पड़ता है। अतः रासायनिक खादों के संतुलित प्रयोग से भूमि, जल एवं वायु को प्रदूषित किये बिना दीर्घकालीन व स्थिर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है ताकि उत्पादन व्यय को कम कर अधिक लाभ प्राप्त हो सके।

रासायनिक उर्वरकों का मृदा पर प्रभाव

मृदा जीवन के सवाब्लबन और जीवन उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करती है। फसलों की अच्छी पैदावार लेने के लिये मिट्टी का उर्वर होना अति आवश्यक है। मिट्टी के उर्वर होने का तात्पर्य यह है कि मिट्टी में पौधों के लिये आवश्यक सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में मौजूद हों। यदि इनमें से एक भी तत्व की मात्रा की मिट्टी में कमी हो जाती है तो शेष तत्व पर्याप्त होने पर भी पौधे इन तत्वों का उपयोग नही कर पाते, जिससे पैदावार में गिरावट आती है। मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धन जैव विविधता का रखरखाव करने और पर्यावरण संवेदनशील कृषि उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। अतः मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखना तथा संरक्षित करना आवश्यक है। मृदा का स्वास्थ्य भौतिक-रासायनिक और जैविक गुणों पर आधारित होता है। फसल सघनीकरण के कारण फसलें मृदा से बहुत बड़ी मात्रा में पोषक तत्वों का दोहन करती है और इसकी आपूर्ति के लिए किसान बिना मृदा परीक्षण के ही रासायनिक उर्वरकों का अपर्याप्त एवं असंतुलित प्रयोग करता है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा की उर्वरता तथा उर्वरक-उपयोग क्षमता दिनों-दिन घट रही है। इन मृदाओं में अम्लीकरण, क्षारीयकरण और लवणीकरण के कारण विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है। अम्लीय मृदा में लौह तत्व की विषक्ता हो जाती है जबकि क्षारीय मृदा में लौह व फॉस्फोरसतत्वों की उपलब्धता में कमी आ जाती है।

रासायनिक उर्वरकों के नुकसान एवं दुष्परिणाम

- खाद्य पदार्थों का गुणात्मक हनन।
- रसायनों के अत्यधिक उपयोग से मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव।
- रसायनों के बढ़ते प्रयोग के कारण जल प्रदूषण की बढ़ती आशंका।
- वन्य जीव एवं लाभकारी जीव-जन्तुओं की कम होती संख्या।
- मृदा की खराब भौतिक दशा के कारण सामान्य सिंचाई की तुलना में अधिक जल की आवश्यकता।

देश में खाद उत्पादन एवं उपयोग संबन्धित आंकड़े:

- भारत रासायनिक खाद के उत्पादन में विश्व में तीसरे स्थान पर है।
- प्रतिवर्ष 121.0 लाख मीट्रिक रासायनिक खादों का निर्माण होता है।
- भारत में आज लगभग 57 बड़े, 99 मध्यम और 65 छोटे स्तर

के उद्योग इस प्रकार की रासायनिक खादों का उत्पादन कर रहे हैं।

• विश्व के बाजार में भारतीय रासायनिक खाद का विस्तार 25 प्रतिशत फैला हुआ है।

• केन्द्रीय रासायनिक और उर्वरक मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार सन् 1950-51 में भारतीय किसान मात्र 7 लाख टन रासायनिक खाद का इस्तेमाल करते थे जो अब बढ़कर 240 लाख टन हो गया है।

निष्कर्ष

रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से फसलों की गुणवत्ता पर सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव देखने को मिलते हैं। शोध दिखाते हैं कि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम और सल्फर उर्वरकों का अधिक प्रयोग सामान्य रूप से फसल उत्पादन और पोषणीय गुणवत्ता को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए, यह अनाज तथा दालों में प्रोटीन, तेलीय फसलों में तेल और सब्जियों में आवश्यक एमिनो एसिड और विटामिन की मात्रा को बढ़ाता है। दूसरी ओर अत्यधिक उर्वरकों का उपयोग, विशेष रूप से नाइट्रोजन, फसल की गुणवत्ता में अवांछनीय परिवर्तन ला सकता है जैसे कि नाइट्रेट स्तर, टाइट्रेटेबल एसिडिटी तथा एसिड से शुगर अनुपात को बढ़ाता है। जबकि कुछ फसलों में विटामिन सी, कुल घुलनशील ठोस कैल्शियम और मैग्नीशियम की मात्रा को कम करता है। अतः फसल की गुणवत्ता को बढ़ाने और नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए रासायनिक उर्वरकों का सावधानीपूर्वक इस्तेमाल करना आवश्यक है।

रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग एक महत्वपूर्ण विषय है, जिस पर हमें गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। हमें इनका सही व सावधानीपूर्वक उपयोग करना चाहिए ताकि हम और हमारे परिवार के स्वास्थ्य को किसी भी प्रकार का खतरा न हो और पर्यावरण का भी संरक्षण किया जा सके।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

दलहनी फसलों के लिए लाभदायक राइजोबियम जीवाणु

प्राची राठौर[1] एवं खलील खांन[2]

[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन मेजर एस.डी.सिंह पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, फर्रुखाबाद

[2]कृषि विज्ञान केंद्र, दिलीप नगर, कानपुर देहात

पत्राचारकर्ता: khankhalil64@gmail.com

परिचय

भारत, दलहनी फसलों का एक प्रमुख उत्पादक देश है। विश्व में दलहन उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान है। देश में विभिन्न प्रकार की दलहनी फसलो की खेती की जाती है, जैसे- चना, मूंग, उड़द, अरहर, लोबिया, मूंगफली, सोयाबीन इत्यादि। दलहन, प्रोटीन का प्रमुख श्रोत है और शाकाहारी भोजन में दलहन मुख्य रूप से शामिल है। सामान्यतः भोजन दाल के बिना अधूरा माना जाता है, तो इसके उत्पादन पर जोर देना भी जरुरी है। इसके लिए वैज्ञानिकों द्वारा विकसित राइजोबियम जीवाणु ने दाल वाली फसलों के उत्पादन में एक जादुई वृद्धि की है। यह खेती की लागत को कम करते हुए मृदा के उपजाऊपन को भी लम्बे समय तक बनाये रखने में अहम भूमिका निभाता है। अतः राइजोबियम जीवाणु का उपयोग किसान भाईयों को अपनी दाल वाली फसलों में एक बार जरुर करके चमत्कारी प्रभाव को देखना चाहिए।' दलहनी फसलों में जैव उर्वरकों का प्रयोग करने से वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन पौधों को अमोनिया के रूप में सुगमता से उपलब्ध होती है। मृदा में पहले से मौजूद अघुलनशील फॉस्फोरस आदि तत्व घुलनशील होकर पौधों को आसानी से उपलब्ध होते है। जीवाणु प्राकृतिक है, इसलिए इनके प्रयोग से भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है और पर्यावरण पर विपरीत असर नही पड़ता है। जैव उर्वरक रासायनिक उर्वरको के पूरक के रूप में जैव उर्वरको के प्रयोग से बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते है।

जैव उर्वरक जीवित उर्वरक है, जिनमे सूक्ष्मजीव जैसे-जीवाणु, कवक किसी धारक नमी पदार्थ के साथ मिश्रित होते है और ये भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने व फसलोत्पादन की वृद्धि में अनेक कार्य करते है। सूक्ष्मजीवो की निर्धारित मात्रा को किसी नमी धारक धूल पदार्थ के साथ (चारकोल) तैयार किया जाता है। यह प्रायः 'कल्चर' के नाम से बाजार में उपलब्ध है।

राइजोबियम के कार्य

राइजोबियम जीवाणु पौधे की जड़ो की गाँठो के अन्दर जाल बनाकर एक छिद्र के अन्दर रहता है। यह अपने भरण-पोषण के लिए आवश्यक पोषक तत्व पौधे से ही प्राप्त करता है। इसके साथ ही बदले में पौधे को वातावरण की नाइट्रोजन को उपलब्ध करवाता है। इस पूरी क्रियाविधि के लिए एंजाइम की आवश्कता होती है, जो कि जीवाणु स्वतः ही बनाकर नाइट्रोजन को वायु से जड़ में पकड़ कर रखता है। इस प्रकार पौधे को नाइट्रोजन बाहरी रूप से देने की समस्या अपने आप ही खत्म हो जाती है।

सारणीः राइजोबियम कल्चर के विभिन्न फसलो में प्रयोग से नाइट्रोजन की बचतः-

समूह	प्रजाति	फसल	नाइट्रोजन मात्रा (कि.ग्रा./हेक्टेयर)
मटर	राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम	चना, मटर, मसूर, मूंग, उड़द, अरहर	62-132
सोयाबीन	राइजोबियम जेपोनिकम	सोयाबीन	57-105
लोबिया	राइजोबियम फेसिओली	राजमा, लोबिया	57-105
अल्फा-अल्फा	राइजोबियम मेलिलोटी	मेथी, संजी	100-150
क्लोवर	राइजोबियम ट्राइफोलियम	बरसीम, लूसर्न	100-200
ल्यूपिन	राइजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिन, औलरथोपस	70-80

ध्यान रखने योग्य बातें

राइजोबियम कल्चर के उपयोग में किसान भाईयों को निम्नलिखित बातें जरुर ध्यान रखनी चाहिए।

• प्रत्येक दलहन को उसके विशेष कल्चर द्वारा उपचारित करना चाहिये। अन्य फसल के कल्चर उपयोग करने से जड़ो में गांठे नही बनेगी और कल्चर का फयदा फसल को कम मिलेगा।

• बीज उपचार की तैयारी करने के बाद अंत में राइजोबियम का पैकेट खोलना चाहिये।

• बीजोपचार के बाद बीज को सीधा धूप में न सुखायें।

• राइजोबियम एक जीवित जीवाणु है, अतः इसे सीधे गर्मी से बचायें और हमेशा ठंडे-छायादार स्थान में ही रखें।

• बीज उपचार के तुरंत बाद बीज बो देना चाहिए या कुछ समय के लिए छायादार जगह पर सुखाए, फिर बुआई करे।

• यदि बीजो को कीटनाशक व फफूँदनाशक रसायनों से उपचारित करना हो, तो क्रमशः फफूँदनाशी, कीटनाशक, और अंत में राइजोबियम कल्चर से उपचारित करे।

• बुआई के दौरान जो बीजोपचारित बीज ठीक से मृदा में न ढकें हो या फिर खुले में पड़े हो, तो उन्हें ठीक तरह मिट्टी में ढकें अन्यथा तेज धूप में जीवाणु मर सकता है।

• गुड़ और पानी के गरम घोल को ठण्डे होने के उपरांत धीरे-धीरे कल्चर को डालें।

• अगर किसान अपने घर में ही राइजोबियम कल्चर को अगली फसल के लिए कुछ समय तक रखना चाहते है, तो ठण्डे व छायादार स्थान पर नमी से दूर रखे।

• पैकेट पर लिखी अंतिम तिथि से पूर्व कल्चर का प्रयोग करना चाहिए।

लाभ

राइजोबियम जीवाणु के दलहनी फसलो में उपयोग करने से पौधों को लाभ होते है, जो कि निम्न हैः-

• इसका उपयोग करना खेती की लागत को सीधे-सीधे कम करता है।

• इसके उपयोग के बाद अलग से नाइट्रोजन के लिए यूरिया नहीं देना होता है। इसमें कम खर्च में अधिक उत्पादन होता है। अतः किसान भाइयों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

• राइजोबियम के प्रयोग से सोयाबीन के उपज में 10 से 25 % तथा चना, मूंग, उड़द, अरहर, लोबिया, मूंगफली, की उपज में उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी होती है। राइजोबियम के प्रयोग से भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती तथा उर्वरा बनी रहती है।

• दलहनों की जड़ो में विद्यमान जीवाणुओं द्वारा संचित नाइट्रोजन अगली फसल द्वारा ग्रहण की जाती है।

• दलहनी फसलो में राइजोबियम कल्चर से उपचारित बीज बोने से लगभग 8 से 15 % फसल के उत्पादन में वृद्धि आंकी गयी है।

• राइजोबियम कल्चर का उपयोग करके नाइट्रोजन ऊर्वरक (जैसे-यूरिया डीएपी) में 25% बचत हो जाती है।

• राइजोबियम द्वारा योगिकीकृत नाइट्रोजन कार्बनिक रूप में होने के कारण पूर्ण रूप से पौधो को प्राप्त होती है।

• रसायन का उपयोग कम होता है, अतः वातावरण पर कोई भी दुष्प्रभाव नही होता है।

• राइजोबियम के उपयोग से अन्य लाभदायक जीवाणुओ और केचुओ की संख्या में वृद्धि होती है। इसलिए भूमि की उर्वराशक्ति लम्बे समय तक बनी रहती है।

विभिन्न किस्में

दलहनी फसले अलग-अलग प्रकार की होती है, जैसे - चना, मटर, मसूर, मूंग, उड़द, अरहर। इसके अलावा सोयाबीन, मूंगफली, अलसी, मेथी, सेंजी, बरसीम, लूसर्न, लोबिया, राजमा आदि भी इस वर्ग में आती है। इसलिए प्रत्येक फसल के लिए जीवाणु की एक विशेष प्रजाति वैज्ञानिको द्वारा विकसित की गयी है और यह उस फसल विशेष की उपज में अधिकाधिक वृद्धि करती है। यह किस्मे और उनके द्वारा नाइट्रोजन की उपलब्धता (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) सारणी में दर्शायी गयी है।

उपयोग की मात्रा

राइजोबियम कल्चर दो प्रकार का आता है। पहला पाउडर (200 ग्राम का पैकेट) और दूसरा तरल या पानी (1लीटर की बोतल) के रूप में दोनों में ही जीवाणु जीवित अवस्था में होता है। प्रायः दोनों का प्रभाव फसल पर अच्छा होता है, पर तरल रूप में जीवाणु ठण्डे स्थान में अधिक समय तक जीवित रह सकते है। पाउडर में सही रखरखाव न होने से जल्दी ही जीवाणु मरने लग जाते है। पाउडर जीवाणु दो पैकेट और तरल रूप में 1 बोतल एक एकड़ फसल के बीजोपचार के लिए पर्याप्त है।

उपयोग की विधि

राइजोबियम जीवाणु का उपयोग मुख्यतः बीजोपचार और मृदा में जुताई के समय किया जाना चाहिए।

• **बीजोपचारः** बीज को ठीक प्रकार से साफ़ कर एक पात्र में लेकर सीधे ही तरल जीवाणु को इस पर छिड़ककर ठीक प्रकार से मिलाते है। जब कि पाउडर जीवाणु के बीजोपचार के लिए 3 पैकेट (600 ग्राम) राइजोबियम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करे। उपचार के लिए 1 लीटर पानी में 60 ग्राम गुड़ डालकर गरम करके घोल बनायें और ठंडा होने पर इसमें 3

पैकेट राइजोबियम कल्चर मिलायें। घोल को धीरे- धीरे लकड़ी के डंडे से हिलाते रहे। इतना घोल 1 हेक्टेयर में बोए जाने वाले बीजों के उपचार के लिए पर्याप्त होता है। इस घोल को बीजों पर धीरे-धीरे इस तरह छिड़कना चाहिये कि घोल की परत सब बीजों पर समान रूप से चिपक जाए। इसके बाद इन बीजों को छायादार जगह पर सुखाए, ताकि थोड़ा चिपचिपापन कम हो जाये, फिर सीधे ही इसकी बुआई कर देते हैं।

• **मृदा में जुताई के दौरान उपयोगः** इसके लिए पाउडर और तरल जीवाणु को सीधा ही गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद के साथ खेत में जुताई के समय मृदा में मिला दें। गोबर की खाद के साथ प्रयोग करने से इसकी उपयोग क्षमता बढ़ जाती है। इसके साथ ही फसल के उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

राइजोबियम

राइजोबियम एक जीवाणु है, जो दलहनवर्गीय फसलो की जड़ो में फूली हुई, गोल-गाँठे बनाकर पौधे की जड़ो में आपसी सहसम्बन्ध बदले में यह पौधे की जड़ो के पोषक के लिए वातावरण की वायुवीय नाइट्रोजन को पौधे को उपयोग करने की अवस्था में प्रदान करता है। अतः किसान भइयो को अलग से नाइट्रोजन के लिए यूरिया देने की अवश्यकता नही पड़ती है। इस प्रकार किसान भइयो की खेती की लागत अपने आप कम हो जाती है।

सक्रिय राइजोबियम जीवाणु की उपस्थिति

बीजोपचार करके बोये गये बीज से बने पौधे की जड़ो की गाँठो का सीधे अवलोकन करके, हम इस जीवाणु की उपस्थिति का पता लगा सकते है। इसके लिए लगभग एक से डेढ़ माह पुराने पौधे की जड़ से गाँठ को अलग कर इसे साफ़ पानी से धो कर ठीक बीचो-बीच इसे काटते है। अगर अंदर गुलाबी या हल्का-लाल रंग दिखाई दे, तो जीवाणु जीवित और सक्रिय अवस्था में अपना काम कर रहा होता है। वही दूसरी तरफ अगर अंदर सफ़ेद या बिना लाल-गुलाबी हो, तो जीवाणु निष्क्रिय है या अभी सक्रिय नही हुआ है। सामान्यताः राइजोबियम को सक्रिय अवस्था में आने के लिए ठीक से गाँठे बनना अति आवश्यक है। गाँठो का विकास पौधे में लगभग डेढ़ से दो माह की अवधि में ठीक प्रकार से हो जाता है। इस दौरान यह सबसे ज्यादा नाइट्रोजन पौधे को उपलब्ध करवाता है।

राइजोबियम की क्रियाविधि को बढ़ाना

• राइजोबियम जीवाणु के सही प्रकार से कार्य करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। अगर सही समय पर इन पोषक तत्वों को पौधे को दिया जाये, तो राइजोबियम की सक्रियता और अधिक बढ़ जाती है।

• फॉस्फोरस की उपलब्धता सक्रिय गाँठो की संख्या और आकार के आलावा गाँठो के प्रति इकाई वजन में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाती है। इसके साथ ही फलियों के कटे हुए हिस्से में नाइट्रोजन की प्रतिशत और कुल मात्रा में वृद्धि करती है। जड़ के आसपास की मृदा में राइजोबियम बैक्टीरिया के घनत्व में सुधार करती है।

• फलियों में गाँठे बनाने के लिए मोलिब्डेनम की आवश्यकता होती है। मोलिब्डेनम एक सूक्ष्म पोषक तत्व है, जो पौधों और पशुओं दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। मोलिब्डेनम के बिना, फलियाँ अपनी जड़ों की गाँठो में नाइट्रोजन को एकत्र करने के लिए आवश्यक बैक्टीरिया नहीं प्राप्त कर सकते है।

• गंधक (सल्फर) के उचित अवशोषण के लिए सभी फलियों में कोबाल्ट आमतौर पर आवश्यक होता है। हीमोग्लोबिन (गाँठो के अंदर का वर्णक) के निर्माण के लिए भी यह आवश्यक होता है। यह ऊर्जा हस्तांतरण का एक महत्वपूर्ण घटक है और फलीदार पौधों, विशेष रूप से दाल में गाँठो के विकास के लिए जिम्मेदार है।

निष्कर्ष

हमारा देश दलहन उत्पादन में पूरे विश्व में प्रथम स्थान पर है। भारत में सभी प्रकार की दलहनी फसलों की खेती की जाती है। शाकाहारी भोजन में प्रोटीन का मुख्य स्रोत दलहन ही है। इसलिए इसके उत्पादन पर जोर देना भी जरूरी है। इसलिए वैज्ञानिकों ने राइजोबियम जीवाणु विकसित किया प्रत्येक दलहनी फसल के लिए जीवाणु की एक विशेष प्रजाति तैयार की गई है, जिसके फलस्वरुप आज भारत में दलहनी फसलों के उत्पादन में 8-15% तक की बढ़ोतरी के साथ-साथ यूरिया, डीएपी में भी 25% तक की बचत होने लगी है। इस जीवाणु का उपयोग समयबद्ध तरीके से बीजोपचार और जुताई के समय गोबर की खाद के साथ मिलाकर क्रमबद्ध तरीके से किया जाये तो उत्पादन में और अधिक वृद्धि देखने को मिलेगी।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

औषधिय गुणों से परिपूर्णः सहजन

आनंद साहिल एवं लोकेश कुमार

[1]युवा पेशेवर 2- आई.सी.ए.आर. केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, वेजलपुर; गोधरा

[2]युवापेशेवर-2के.शु.बा.सं., बीकानेर

पत्राचारकर्ता: anandmaharana19981998@gmail.com

परिचय

सहजन का वैज्ञानिक नाम मोरिंगा ओलिफेरा लैम है। यह एक बहुवर्षीय, तेजी से बढ़ने वाला छोटे प्रजाति पेड़ो के अंतर्गत आता है, जो की एक वर्ष में ही फल देने लगता है। सहजन की खेती मुख्यतः तमिलनाडु, बिहार, उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा इत्यादि राज्यों मे आसानी से की जा रही है एवं धीरे-धीरे अन्य राज्यो मे भी इसकी खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। भारत के अलावा फिलीपिंस, मैक्सिको, श्रीलंका, मलेशिया एवं अन्य देशो मे जहा पर सहजन की खेती विशेष रूप से की जाती है। सहजन के पौधे समान्यतः औषधीय गुण से परिपूर्ण होते है, इसका उपयोग मुख्यतौर पर विभिन्न रोगों के निवारण हेतु किया जाता है। चिकित्शको का मानना है कि सहजन मानव जीवन के लिए वरदान है, और सभी प्रकार से हमारे लिए आती लाभदायक है। सामान्य भाषा में कहा जाए तो इसकी पत्तियाँ जड़े, फल, फूल आदि। इसके बीजों के प्रयोग से कब्ज से निवारण होता है क्योकि इसके बीज मे फाइबर अत्यधिक मात्रा मे पाया जाता है। इसके बीज का प्रयोग मुख्यतः औषधि बनाने मे किया जाता है, जिससे पाचन तंत्र मे सुधार किया जा सकता है। सहजन के बीजों को रात मे पानी मे भिगोकर रखने के बाद सुबह पीने से अनिद्रा की समस्या को दूर कर सकते है। इसमे कैल्शियम भरपूर मात्रा मे होता है इसीलिए इसका प्रयोग करने से हड्डियों से संबन्धित समस्याओ का निवारण किया जाता है एवं इसके तेल (बेन ऑइल) का प्रयोग भी हड्डियाँ की दर्द को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। इसके नियमित प्रयोग से कोलेस्ट्रॉल को भी कम किया जा सकता है और इसके बीज के तेल से त्वचा संबन्धित रोगों से भी मुक्ति मिलती है, इसके पत्ते का नियमित मात्रा मे प्रयोग करने से ब्लडप्रेशर को नियमित कर सकते है, हृदय से संबन्धित एवं अन्य रोगो को भी इसके उपयोग से निजात मिलने की काफी संभावनाएं है। गाँवों मे इसकी पौधो को घर के आस-पास लगाते है ताकि इसकी कच्ची फली से सब्जी बना सके परंतु इसके सम्पूर्ण गुणों को विस्तृत जानकारी के पश्चात इसकी खेती पर जोड़ दिया जा रहा है। इसके आतिरिक्त सहजन के तेल को निकाल कर उपयोग मे लाया जाता है साथ-ही-साथ बीजों को उबालकर सुखाकर उससे पाउडर को तैयार कर विदेशों मे निर्यात किया जाता है।

सहजन के पोषक तत्व

नमी	85.39 प्रतिशत
ऊर्जा	123 कैलोरी जुल प्रति 100 ग्राम
प्रोटीन	2.62 ग्राम प्रति 100 ग्राम
वसा	0.12ग्राम प्रति 100 ग्राम
कार्बोहाईड्रेट	3.76ग्राम प्रति 100 ग्राम
रेशा	6.83ग्राम प्रति 100ग्राम
खनिज लवण	1.27ग्राम प्रति 100ग्राम
आयरन	0.73ग्राम प्रति 100 ग्राम
कैल्शियम	33.30मि ॰ ग्राम प्रति 100 ग्राम
सोडियम	22.38 मि ॰ ग्राम प्रति 100 ग्राम
पोटेशियम	419 मि ॰ ग्राम प्रति 100 ग्राम
विटामिन -सी	71.86मि ॰ ग्राम प्रति 100 ग्राम
बीटा कैरोटीन	17.28 माइक्रोग्राम प्रति 100 ग्राम
फोलिक एसिड	62.75 माइक्रोग्राम प्रति 100 ग्राम

सहजन की खेती

पोषक गुण

सहजन का लगभग हर हिस्सा महत्वपूर्ण पोषक तत्वों का मुख्य श्रोत है। सहजन की पत्तियाँ मुख्य रूप से कैल्शियम, पोटेशियम, जस्ता, मैग्नीशियम, लोहा और तांबा जैसे खनिजों में समृद्ध हैं। विटामिन ए, बीटा कैरोटीन, विटामिन बी जैसे फोलिक एसिड, पाइरिडोक्सिन और निकोटिनिक एसिड, विटामिन सी, डी और ई जैसे विटामिन सहजन में मौजूद हैं। फाइटोकेमिकल्स जैसे टैनिन, स्टेरोल, टेरपेनोइड्स, फ्लेवोनोइड्स, सैपोनिन, एंथ्राक्विनोन्स, अल्कलॉइड और ग्लूकोसाइनोलेट्स, आइसोथियोसाइनेट्स, ग्लाइकोसाइड यौगिकों और ग्लिसरॉल

-1-9-ऑक्टेडेकैनोएट से मुख्यतः कैंसर जैसे घातक बीमारियों के साथ-साथ मधुमेह रोगियों के स्वस्थ्य को नियंत्रित रखता है। सहजन के पत्तों में कम कैलोरी होता है, जिससे इसका उपयोग मोटापे से ग्रस्त लोग अपने आहार मे करते है। इसकी फलियाँ रेशेदार होती है जोकि पाचन समस्याओं का इलाज करने और बृहदान्त्र कैंसर को नियंत्रित करने मे काफी अच्छी होती है। विभिन्न शोध के उपरांत पता चलता है कि अपरिपक्व फली में लगभग 46.78% फाइबर और लगभग 20.66% प्रोटीन सामग्री होती है। फली में 30% एमिनो एसिड सामग्री होती है, पत्तियों में 44% और फूलों में 31% होती है। विभिन्न अध्यानों से पता चलता है कि सहजन में पालक से ज्यादा आयरन की मात्रा होती है। सहजन के पाउडर का उपयोग लोहे की गोलियों के विकल्प के रूप में किया जा सकता है, इससे एनीमिया जैसी घातक बीमारियाँ से निजात मिल सकती है।

मृदा एवं जलवायु

सहजन की खेती मुख्य रूप से सभी प्रकार की मृदाओ मे की जा सकती है। इसकी खेती थोड़ी अम्लीय से थोड़ी क्षारीय मृदाओं मे भी आसानी से की जा सकती है। इसकी खेती हेतु मृदा का पीएच मान लगभग 5-9 तक अच्छी मानी जाती है। सहजन की अच्छी वृद्धि एवं उपज प्राप्त करने हेतु से रेतीली या दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है। मृदा समान्यतौर पर उर्वर एवं जैविक पदार्थ से परिपूर्ण होने से प्रति पौधे उपज मे वृद्धि होती है।

सहजन की खेती मुख्यतः दुनिया के किसी भी उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में जहाँ 25-35 डिग्री सेल्सियस के आसपास तापमान हो वहाँ आसानी से किया जा सकता है। इसकी खेती दौरान लगभग 250-3000 मिमी वर्षा होने पर इसकी वृद्धि एवं उपज दोनों मे वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक देखा गया है।

खेत की तैयारी

इसकी खेती हेतु सर्वप्रथम मिट्टी पलट हल के प्रयोग से गहराई से जुताई करना चाहिए। गहरी जुताई करने से विभिन्न मृदाजनित हानिकारक कीटों, सूत्रकृमि एवं मृदा जनित रोगों से निजात मिलता है। खेतो मे घास, अन्य कचरे और विभिन्न फसलों के पौधे को निकाल कर एक सप्ताह बाद दूसरी बार खेतों की अच्छी तरह जुताई करके पाटा चलाकर मिट्टी को बराबर करना चाहिए। जुताई के पश्चात खेतों को निश्चित भागों बाँट देना चाहिए एवं इसका निश्चित दूरी पर गड्ढे 45’45’45 सेमी करना चाहिए।

किस्मों का चयन

सहजन की अच्छी उपज लेने हेतु इसकी किस्मों का चयन सावधानीपूर्वक करना चाहिए। यदि किस्मों का चयन अच्छे तरीके से नही किया गया तो मेहनत बर्बाद हो जाती है क्योकि गलत किस्मों की वजह से पौधो की वृद्धि एवं उपज मे काफी कमी हो जाती है। सहजन का पौधा मुख्यतः दो तरीके से लगाया जाता है जैसे बीजों से एवं कटिंग द्वारा। बीजों को हमेशा सरकारी संस्थान जैसे कृषि विश्वविधालय, अनुशंधान केंद्र एवं अन्य विश्वासी संस्थान से खरीदना चाहिए। कुछ प्रमुख किस्म जैसे पीके एम -1, पिके एम-2, जफना, के एम-1 कोंकण रुचिरा इत्यादि प्रमुख है।

नर्सरी तैयार करने का तरीका

सहजन की पौध मुख्यरूप से दो तरीके से तैयार किया जाता है, जैसे बीज एवं कटिंग। एक हेक्टर खेत मे पौधे लगाने हेतु 625 ग्राम बीज प्रायप्त होते है। कटिंग का चयन मुख्यरूप से अधिक उपज देने वाली एवं स्वस्थ्य मातृ पौधो से करना चाहिए। बीजों को सर्वप्रथम नर्सरी मे तैयार करना चाहिए। इसके लिए बीजों को सरकार द्वारा पंजीकृत संस्थान से प्राप्त करना चाहिए। बीजो को लगाने हेतु खेत की मिट्टी, वर्मीकम्पोस्ट का (2:1) को छोटी-छोटी बैग मे भर लेना चाहिए। उसके पश्चात इसमे बीजो को 2-5-3 से॰मी॰ की गहराई मे लगा देते है इसके उपरांत मिट्टी मे नमी हेतु हल्की पानी डाल देना चाहिए। कटिंग को मातृ पौधो से प्राप्त करके नर्सरी मे पहले तैयार कर लेते है उसके उपरांत रोपण हेतु तैयार खेतो मे एक निश्चित दूरी 3* 2.5 से॰मी॰ पर लगा दिया जाता है। सहजन की अच्छी वृद्धि एवं उपज प्राप्त करने के लिए तैयार किए गए गड्ढे मे प्रति गड्ढा 3 किग्रा वर्मीकम्पोस्ट या सड़ी हुई गोबर की खाद डालना चाहिए। वर्मीकम्पोस्ट या सड़ी हुई गोबर को मिट्टी मे अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके उपरांत पौधो को लगाना चाहिए एवं पौधों को सहारे हेतु कोमल डंडे को सुतली से बांध देना चाहिए ताकि पौधे शुरुआती दौर मे हवा से गिर ना सके।

सिंचाई एवं उर्वरक

सहजन की अच्छी वृद्धि एवं उपज लेने हेतु समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। पौध रोपण के उपरांत हल्की सिंचाई करना चाहिए। सिंचाई मुख्यतौर पर 10-15 दिनो के अन्तराल पर करने से पौधो की अच्छी वृद्धि होती है। सिंचाई हमेशा थाला बनाकर ही करना चाहिए ताकि पानी का समुचित उपयोग किया जा सके। पानी की बचत के साथ सिंचाई करने

के लिए टपक सिंचाई विधि अच्छी मानी जाती है। उर्वरक हेतु इसमे गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग प्रति फलन के उपरांत करना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार एक अवांक्षिक पौधा होता है, जिसको उगने हेतु कोई निश्चित जगह नही होता है, यह हमेशा कही भी निकाल आता है एवं मुख्य फसलों को प्रभावित करता है। बहुवर्षीय खरपतवार जैसे दूब, घास एवं मोथा आदि को नियंत्रित करना कठिन होता है। पौध लगाने से पूर्व खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिए। इसके कुप्रभावों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

उपज

सहजन की खेती मुख्य रूप से इसके पौष्टिक गुणो के लिए की जाती है। इसकी कोमल पत्तियों का प्रयोग करके विभिन्न तरह के रोगों से नियंत्रण किया जाता है। इसके फूलों का भी अपना एक विशेष महत्व है, जिसकी सब्जियाँ बनाकर खाई जाती है एवं शरीर को स्वस्थ्य रखा जाता है। इसके कच्ची फलियों का प्रयोग सब्जियों के रूप मे किया जाता है, जो की खाने में अति स्वादिष्ट होता है। सहजन की फलियों को पाउडर के रूप मे एवं इसकी फली का आचार बनाने हेतु उपयोग किया जाता है। इन सभी महत्वपूर्ण कारणों से इसकी तोराई विभिन्न अवस्थाओ पर किया जाता है। कच्ची फलियों को प्राप्त करने हेतु पौधे 6-9 माह बाद फूल देने लगते है इसके उपरांत फली प्राप्त किया जाता है। इसकी उपज मुख्य रूप से पौधो की आयु पर निर्भर करती है। जब पौधा पूर्ण विकसित हो जाता है तो प्रति पौधा फली 15-25 किग्रा प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

सहजन (पत्तियाँ ,फूल एवं फलियाँ) का उचित मात्रा मे प्रयोग करते रहने से मानव स्वस्थ्य एवं मजबूत रह सकता है। इसकी व्यवसायिक स्तर पर यदि खेती करे तो इसकी उपज को बाजार मे प्रसारित करके एवं इसके फलियों से विभिन्न उत्पाद जैसे पाउडर, आचार आदि बनाकर एक अच्छा पौष्टिक पदार्थ के साथ-साथ अपना आय का भी स्रोत बना सकते है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

गेहूँ के प्रमुख कीट, रोग, पहचान तथा रोकथाम

अभिषेक सिंह[1*], बुरुध मधु[2], सुभम सिंह[3], विवेक विश्वकर्मा[4] एवं ऋचा साहू[5]

[1,2] कीट विज्ञान विभाग, [3,4 एवं 5]पादप रोग विज्ञान विभाग

सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, नैनी

पत्राचारकर्ता: amitpatel101298@gmail.com

परिचय

गेहूँ (जीनसः *ट्रिटिकम*) एक अनाज है। यह एक प्रकार की घास है। इसे सबसे पहले निकट पूर्व के एक क्षेत्र लेवंत में उगाया गया था। अब इसकी खेती दुनिया भर में की जाती है। विश्व स्तर पर, गेहूँ मानव भोजन में वनस्पति प्रोटीन का प्रमुख स्रोत है। इसमें अन्य प्रमुख अनाज जैसे मक्का गेहूँ का अनाज एक मुख्य भोजन है, जिसका उपयोग खमीरयुक्त, चपटी और उबली हुई ब्रेड, बिस्कुट, कुकीज़, केक, नाश्ता अनाज, पास्ता, नूडल्स, कूसकूस के लिए आटा बनाने के लिए किया जाता है। इसे इथेनॉल बनाने के लिए, एल्कोहॉलिक पेय के लिए, या जैव ईंधन बनाने के लिए भी किण्वित किया जा सकता है। गेहूँ के पौधे में लंबी, पतली पत्तियाँ, अधिकांश प्रकार के गेहूँ के पौधों में तने खोखले होते हैं और सिरों पर 20 से 100 तक कई प्रकार के फूल होते हैं। फूलों को स्पाइकलेट्स में एक साथ समूहीकृत किया जाता है। प्रत्येक स्पाइकलेट में दो से छह फूल होते हैं। अधिकांश स्पाइकलेट्स में, दो या तीन फूल निषेचित हो जाते हैं, और इससे वे भोजन के लिए उपयोग किए जाने वाले अनाज का उत्पादन करते हैं। गेहूँ में 2mg सोडियम और 431mg पोटैशियम होता है। 100 ग्राम गेहूँ की कुल कार्बोहाइड्रेट सामग्री 71 ग्राम है। इसमें कैल्शियम की अनुशंसित दैनिक खुराक का 3%, लोहे का 19%, विटामिन बी -6 का 20% और 36% मैग्नीशियम के साथ 14 ग्राम प्रोटीन होता है। हालांकि, इसमें 0% विटामिन ए, सी, डी, और बी -12 है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व पंजाब सर्वाधिक रकबे में गेहूँ की पैदावार करने वाले राज्य है। रूस, अमरीका और चीन के बाद भारत दुनिया का चौथा सबसे बड़ा गेहूँ का उत्पादक देश है। विश्व में पैदा होने वाली गेहूँ की पैदावार में भारत का योगदान 8.7 फीसदी है। फसल वर्ष 2021-22 (जुलाई-जून) में देश का वास्तविक गेहूँ उत्पादन 10.77 करोड़ टन रहा है।

कीट

गेहूँ की फसल में किसानो को प्राकृतिक आपदा के साथ-साथ कीट पतंगों का भी प्रकोप झेलना पड़ता है। अन्य फसलों के अपेक्षा गेहूँ में भी कीटो का प्रकोप अधिक रहता है। कीट व्याधि के अतधक प्रकोप से फसल पूरी तरह से नष्ट होती जा रही है।

गेहूँ एफिड (माहूँ)

रूसी गेहूँ एफिड (*ड्यूराफिस नॉक्सिया*), गेहूँ और जौ का कीट है, यह गेहूँ और जौ में पाया जाता है। भोजन के दौरान एफिड पौधे में विषैले पदार्थ डाल देता है, जिससे विकास रुक जाता है और भारी संक्रमण से पौधा नष्ट हो जाता है। आमतौर पर यह कीट हल्के हरे रंग का और 2 मिमी तक लम्बा होता है। कॉर्निकल्स बहुत छोटे, गोल होते हैं, और उनमें कमी दिखाई देती है। फौड़ा के ऊपर एक उपांग होता है, जो एफिड को दो पूंछों जैसा दिखता है। इस एफिड की लार पौधे के लिए जहरीली होती है एवं अनाज की पत्तियों पर सफेद धारियाँ पैदा

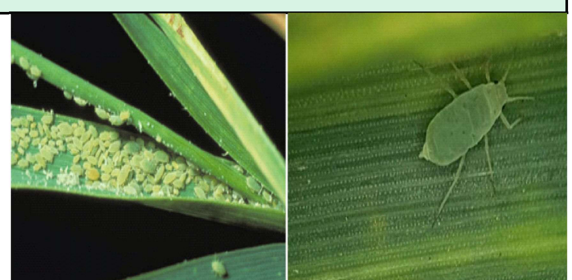

करती हैं। एफिड द्वारा खाने से पत्ती सफेद हो जाती है और सिर के चारों ओर मुड़ जाती है, जिससे फसल के सिरे का ऊपरी भाग कीट खा जाते है और फसल की वृद्धि रूक जायेगी।

कीट नियंत्रण

माहूँ का प्रकोप गेहूँ फसल में ऊपरी भाग (तना व पत्तों) पर होने की दशा में इमिडाक्लोप्रिड 250 मिलीग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। फसल चक्र अपना चाहिए। बीज उपचार करना। प्रतिरोधक किस्मों का उपयोग करें

गेहूँ का गुलाबी तना छेदक

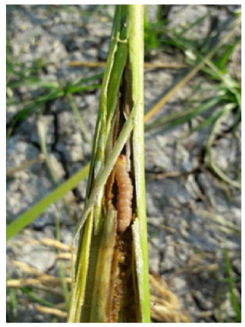

गुलाबी तना छेदकः (सेसमिया इनफेरेंस) वॉकर गुलाबी लार्वा तने में प्रवेश कर मृत हृदय लक्षण उत्पन्न करता है। यह कीट फसल की फुटान शुरू होते ही नुकसान पहुँचाना शुरू कर देता है। यह कीट Wheat Crop insect advisory नए पौधे की अवस्था में फसल पर हमला करती है और लार्वा पौधे के तने में प्रवेश करके टिशू को खाता है। परिणाम स्वरूप फसल की प्रारंभिक अवस्था में तने में डेट हार्ट बन जाता है। शुरुआत में ही प्रभावित पौधे पीले पड़ जाते हैं। इस कीट से प्रभावित पौधों को जब उखाड़ा जाता है तो निचली शिराओं पर गुलाबी रंग की इल्लियाँ देखी जा सकती है।

कीट नियंत्रण

अंकुरण के बाद हर 20 दिनों के अंतराल पर फोरेट 10% सीजी @1 लीटर/हेक्टेयर का छिड़काव करें सही समय पर बीज की बुवाई करे। फसल चक्र अपनाना चाहिए। प्रतिरोधक किस्मों का उपयोग करें। स्टिकी ट्रैपऔरफेरोमोन ट्रैप का उपयोग कर सकते है। कीटनाशक क्लोरपाइरीफॉस 50% + साइपरमेथ्रिन 5% ईसी को 2 मिली/लीटर पानी की मात्रा म घोलकर छिड़काव करे।

गेहूँ सेना का कीड़ा

सेना का कीड़ा स्पोडोप्टेरा मॉरिटिया कैटरपिलर शाम के समय बड़ी संख्या में मार्च करते हैं और सुबह तक गेहूँ के पौधों की पत्तियों को खाते हैं और दिन के दौरान छिप जाते हैं। वे सामूहिक रूप से भोजन करते हैं और एक खेत में पौधों को खिलाने के बाद अगले खेत में चले जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर फसल चरी हुई दिखाई देती है। आक्रमणित पौधे ठूँठ में तब्दील हो जाते हैं। सिर पर अंग्रेजी भाषा के वाई (Y) के आकार की एक सफेद रंग की संरचना (d) और उदर खंड आठ पर वर्गाकार (e) और उदर खंड नौ, पर समलम्बाकार (ट्रेपोजॉइड) बड़े धब्बे (f)। प्रभावित हो सकती है। यह लक्षण फॉल आर्मीवर्म लार्वा की पहली और दूसरी इंस्टार के कारण होते हैं, जो पत्ती की सतह को खुरच कर खाते हैं।

कीट नियंत्रण

खेत में पानी बहा दें। पानी भरने से छिपे हुए लार्वा सतह पर आ जाते हैं और इस प्रकार पक्षी उन्हें चुन लेते हैं। सिंचाई करते समय पानी में मिट्टी का तेल डालें बत्तखों को खेत में आने दें. 8 सेंट तक क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी 80 मि.ली.+20 लीटर पानी का छिड़काव करेंः टैचिनिड्स, इचन्यूमोनिड्स, यूलोफिड्स, चाल्सीड्स और ब्रैकोनिड ततैया जैसे परजीवी इस कीट को परजीवी बनाते हैं। घास के मैदानी टिड्डे, चींटियाँ, पक्षी और टोड इस कीट को खाते है।

गेहूँ का दीमक कीट (Termite)

माइक्रोटर्मेस ओबेसी, गेहूँ दीमक, माइक्रोटर्मेस जीनस की दीमक की एक छोटी प्रजाति है। यह भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान और वियतनाम का मूल निवासी है। यह गेहूँ का एक प्रमुख कीट है। ये दीमक क्रीम रंग के और गहरे सिर वाले होते हैं। ये सुबह-शाम अधिक सक्रिय रहते हैं। यह गेहूँ के प्रमुख कीटों में से एक है। जो की बुआई के तुरंत बाद और पकने के करीब नुकसान पहुँचाते हैं। इससे अत्यधिक संक्रमित पौधे मुरझा सकते हैं और आसानी से उखाड़े जा सकते हैं। फसल की बुवाई से लेकर कटाई तक दीमक का आक्रमण देखने को मिलता है, यह मिट्टी में रहने वाला सर्वभक्षी कीट है, जो पौधे की जड़ों को खाकर नष्ट कर देता है। प्रभावित खेत की मिट्टी को खोदने पर दीमक के घर देखे जा सकते है। बुआई के बाद और कभी-कभी परिपक्वता की अवस्था पर दीमक द्वारा गेहूँ की फसल को नुकसान पहुँचाया जाता है। दीमक फसल की जड़ों, बढ़ते पौधों के तने को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके कारण क्षतिग्रस्त पौधे पूरी तरह से सूख जाते हैं और जिससे फसलों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

दीमक कीट से बचाव

बचाव के लिए गोबर की अच्छी तरह से सड़ी खाद का ही प्रयोग करे और खरपतवार नष्ट करते रहे। इससे बचाव के लिए बुआई के पहले खेत में गहरी जुताई कर दीमक के टीले को केरोसिन से भर दे ताकि दीमक की रानी के साथ-साथ अन्य सभी कीट मर जायें। बुआई से पहले क्लोरोपायरीफोस (20% ई.सी)@ 5 मिली या इमिडाक्लोप्रिड 600FS की 1.5 मिलीलीटर या फिप्रोनिल 5SC 6 मिलीलीटर प्रति किलो बीज को अवश्यकतानुसार पानी में मिलाकर इसका घोल बीजों पर

समान रूप से छिड़काव कर बीज उपचारित करें। जैविक बुवेरिया बेसियाना एक किलो या मेटारिजियम एनिसोपली एक किलो मात्रा को एक एकड़ खेत में 2 टन गोबर की खाद में मिलाकर अन्तिम जुताई के समय मिट्टी में मिला दे। द्रव मेटारीजियम एनिसोपली को टपक विधि से सिंचाई के साथ देने पर मिट्टी में मौजूद सफ़ेद लट्ट, दीमक के नियंत्रण प्रभावी पाया गया है। खड़ी फसल में कीट दिखने पर क्लोरोपायरिफोस 20% EC की एक लीटर मात्रा प्रति एकड़ सिंचाई के साथ देनी चाहिए।

गेहूँ के कीटः घुझिया कीट

घुझिया घुनः *टैनिमेकस इंडिकस* (*करकुलियोनिडेः कोलोप्टेरा*): यह कीट रबी की अंकुरित फसलें जैसे गेहूँ, जौ, चना और सरसों को भरी मात्रा में नुक्सान पहुँचाते है। क्षति के लक्षणः केवल वयस्क ही मेजबान पौधों की पत्तियों और कोमल टहनियों को खाते हैं। अंकिरित पौधों के अंकुरों को जमीनी स्तर काट देते हैं, जिससे फसल की वृद्दि रूक जाती है। अक्सर फसल दोबारा बोई जाती है। इसमें क्षति विशेष रूप से अक्टूबर-नवंबर के दौरान गंभीर होती है, जब रबी फसलें अंकुरित हो रही होती हैं। यह कीट सबसे ज्यादा नर्सरी स्टेज में लगती है। घुन मिट्टी के भूरे रंग के होते हैं और उनकी लंबाई लगभग 6.8 मिमी और चौड़ाई 2.4 मिमी होती है। इनके अगले पंख आयताकार और पिछले पंख लगभग त्रिकोणीय होते हैं, लेकिन ये उड़ नहीं सकते। यह कीट जून से दिसंबर तक सक्रिय रहता है और वर्ष के शेष समय में मिट्टी में लार्वा या प्यूपल डायपॉज से गुजरता है। जून में उभरने वाले घुन अक्टूबर में यौन रूप से परिपक्व हो जाते हैं। वे बार-बार संभोग करते हैं और 5-11 किस्तों में मिट्टी में ढेलों के नीचे या जमीन की दरारों में 6-76 अंडे देते हैं। अंडे की अवधि 6-7 सप्ताह होती है। युवा ग्रब मिट्टी में समा जाते हैं। ग्रब अवधि 10-18 दिन है और 15-60 सेमी. की गहराई पर मिट्टी के कक्षों में प्यूपा बनता है। प्यूपा अवस्था 7-9 सप्ताह तक चलती है और वयस्क अगले वर्ष जून या जुलाई में निकलते हैं। इस कीट की एक वर्ष में केवल एक ही पीढ़ी होती है।

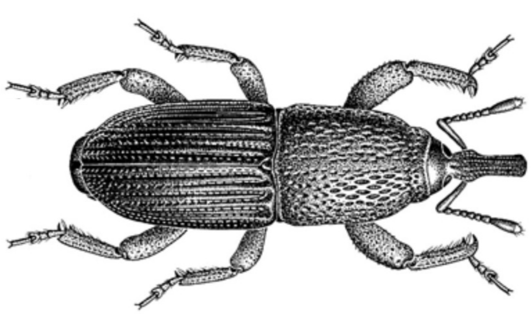

कीट नियंत्रण

क्लोरोपायरीफास 20 प्रतिशत ई.सी. 2.5 ली. प्रति हे. की दर से सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए। खरपतवार नष्ट करते रहे। इससे बचा फसल चक्र अपना चाहिए। बीज उपचार व बुआई के पहले खेत में गहरी जुताई करें।

रोग

गेहूँ के पसल में कीटो के साथ-साथ रोगो का भी प्रकोप अधिक रहता है, जो की निम्नलिखित हैः

गेहूँ का पत्ती रतुआ या भूरा रतुआ रोग। Wheat Leaf Rust or Brown Rust Disease

(*पुकिनिया ट्रिटिसिना*) यह रोग गेहूँ की फसल के शुरूआती अवस्था में देखने को मिलता है, इस रोग के कारण पत्तियों पर भूरे रंग के छोटे-छोड़े अंडाकार आकार के धब्बे पत्तियों के निचली सतह पर बनते दिखाई देते है, कभी-कभी इस रोग का प्रभाव जायदा होने पर धब्बो का निचला हिस्सा भूरे रंग का और किनारा कत्थई रंग का दिखाई देने लगता है। इस रोग का प्रभाव 20 से 25 सेल्सियस तापमान पर ज्यादा प्रभावकारी दिखाई देता है। गेहूँ में इस रोग से उत्पादन पर 20-30% तक का नुकसान देखने को मिलता है, तो इस रोग का नियंत्रण समय पर करना चाहिए।

रोग नियंत्रण

क्षेत्र के लिए अनुमोदित नवीनतम रतुआ सहिष्णु प्रजातियाँ ही उगायें। एक किस्म को अधिक क्षेत्र में ना लगाएं। खेतों का निरीक्षण करें तथा पौधों के आस-पास उगायी गयी फसल पर अधिक ध्यान दें। रोग के लक्षण दिखाई देते ही प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी. (टिल्ट) या टेब्यूकोनाजोल 25 ई.सी. का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें। रोग के प्रकोप तथा फैलाव को देखते हुए दूसरा छिड़काव 10-15 दिन के अंतर पर करें।

गेहूँ का धारीदार रतुआ या पीला रतुआ रोग

गेहूँ का पीला रतुआ (पुकिनिया स्ट्राइफोर्मिस एफ.एसपी. ट्रिटिसी), जिसे गेहूँ की धारीदार जंग के रूप में भी जाना जाता है। गेहूँ के इस रोग के प्रारंभिक लक्षण पत्तियों के उपरी सतह पर पीले रंग की धारियों के रूप में देखने को मिलता हैं, इस रोग के कारण पत्तिया पीली पड़ जाती है और पत्तियों पर पीले पाउडर के रूप में स्पोर जमीन पर गिरने लगता है। यदि यह रोग कल्ले निकलने समय की अवस्था में आ जाता है तो फसल में बालियाँ नहीं बनती है, गेहूँ की फसल में यह रोग तापमान के बढने पर कम हो जाता है। प्रकोप ज्यादा होने पर पत्तियों पर पीली

धारियाँ काले रंग की हो जाती है। यह रोग भारत के उत्तरी क्षेत्रो में ही देखने को मिलता हैं, ध्यान रहे की ऐसे क्षेत्रो में फसल की अधिक देखभाल की आवयश्कता पड़ती है।

रोग नियंत्रण

आटे के पीले रतुआ की तुलना में जौ के पीले रतुआ को नियंत्रित करना बहुत आसान है क्योंकि पत्ते के प्राकृतिक रतुआ के लिए मोती रतुआ अधिक आसानी से उपलब्ध होते हैं। प्रोथियोकोनाज़ोल पर आधारित और रेनकोस्पोरियम और नेट ब्लॉच को नियंत्रित करने के लिए एक समय पर कवकनाशी, कि फैंडैंगो (प्रोथियोकोनाज़ोल + फ्लुओक्सास्ट्रोबिन) पर डिज़ाइन किया गया है, आमतौर पर पाई रतुआ का अभ्यास। उच्च उपकरण क्षमता वाली या जिन बीजारोपण पर बीमारी का दबाव बढ़ रहा है, उनके लिए सिल्ट्राएक्सप्रो (प्रोथियोकोनाज़ोल + बिक्साफेन) को फैंडैंगो से भी अधिक निर्माण बढ़ाने में सक्षम पाया गया है।

गेहूँ का तना रतुआ या काला रतुआ रोग

तने का रतुआ, जिसे अनाज का रतुआ, काला रतुआ, लाल रतुआ या लाल धूल के रूप में भी जाना जाता है, कवक *पुकिनिया ग्रैमिनिस* के कारण होता है। गेहूँ में इस रोग का प्रभाव जैसे तापमान 20 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक होता जाता है, तो इस रोग के लक्षण तने तथा पत्तियों पर भूरे या काले रंग के स्पोर के रूप में दिखाई देने लगता है। इस रोग का प्रकोप अधिकतर दक्षिण भारत के क्षेत्रों में अधिक देखा जाता है। अब अगर उत्तरी भारत की बात करे तो यह रोग फसल पकने के समय पहुँचता है। इसलिए इस रोग का प्रभाव ज्यादा नहीं होता है।

रोग नियंत्रण

टेबुकोनाज़ोल या प्रोथियोकोनाज़ोल युक्त कवकनाशक फफूँद को नियंत्रित करने के लिए उपयोग किए जा सकते हैं। रोकथाम उपचारों के लिए, ट्रायज़ोल और स्ट्रोबिलुरिन युक्त कवकनाशकों को लगाया जा सकता है। स्ट्रोबिलुरिन के विरुद्ध कुछ हद तक प्रतिरोध देखा गया है। रोग-प्रतिरोधी गेहूँ की किस्मों का उपयोग करें जल्दी पकने वाली क़िस्मों का उपयोग करें। वंसत में, जितनी जल्दी हो सके रोपण करें। विपरीत स्थितियों से बचने के लिए शरद ऋतु में जितनी देर से हो सके रोपण करें। रोग के किसी भी संकेत के लिए खेतों की नियमित निगरानी करें। खेत में फफूँद जीवित न रह पाए, इसके लिए पौधों के सभी अवशेषों को निकाल कर नष्ट कर दें।

गेहूँ का कंडुआ रोग

गेहूँ की ढीली *स्मट उस्टिलैगो नुडा* के कारण होती है। गेहूँ की फसल में कंडुआ रोग के लगने से बालियों में दानो के स्थान पर काले चूर्ण दिखाई देते है। जब इस रोग का प्रभाव ज्यादा हो जाता है तो पूरी बालियाँ रोग ग्रसित होकर समाप्त हो जाती है। फसल से फफूँद के बीजाणु हवा में झड़ने से स्वस्थ बालियाँ भी संक्रमित हो जाती है। यह एक बीज जनित रोग है। इसलिए बीजोपचार करना जरुरी माना जाता है।

रोग नियंत्रण

नियंत्रण के लिए प्रतिरोधक किस्मों का उपयोग करें। देर से बुवाई नहीं करनी चाहिए बीज का उपचार करके बुवाई करनी चाहिए प्रभावित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें। प्रमाणित बीजों का उपयोग करें। सबसे पहले गेहूँ के बीजो की बुवाई से पहले विटावैक्स पावर (कार्बोक्सिन + थीरम) का 2.5 से 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। रोग की शुरूआती अवस्था पर मैनकोजेब 75% डब्ल्यूपी का 600 ग्राम /एकड़ 200 लीटर पानी के हिसाब से उपयोग करे। यदि रोग का प्रभाव ज्यादा क्षत्रों में दिख रहा हो तो हेक्साकोनाज़ोल 4% + ज़िनेब 68% WP को 400 ग्राम/एकड़ 200 लीटर पानी के हिसाब से फसल पर छिड़काव के लिए उपयोग करे। अगर बहुत ज्यादा रोग की समस्या फसल पर दिखाई दे रही हो तो इस रसायन का उपयोग थियोफनेट मिथाइल 70% w/w को 0.5 ग्राम/ लीटर पानी फसल पर छिड़काव के लिए उपयोग करे।फसल के आखरी समय में जो रोग लगते है उस समय प्रोपिकोनाज़ोल 25% ईसी को 200 ग्राम/ एकड़ 200 लीटर पानी का छिड़कव बहुत ज्यादा लाभकारी साबित होता है।

करनाल बंट

नियोवेसिया इंडिकाकरनाल - करनाल बंट (जिसे आंशिक बंट के रूप में भी जाना जाता है) गेहूँ, ड्यूरम गेहूँ और ट्रिटिकल का एक कवक रोग है। स्मट फंगस *टिलेटिया इंडिका*, एक *बेसिडिओमाइसीट*, गुठली पर आक्रमण करता है। करनाल बंट के लक्षणों को अक्सर क्षेत्र में पहचानना मुश्किल होता है क्योंकि किसी दिए गए सिर पर संक्रमित गुठली की घटना कम होती है। सोरस उत्पादन के कारण ग्लूम्स का कुछ प्रसार हो सकता है लेकिन यह उतना व्यापक नहीं है जितना आम बंट के साथ देखा जाता है। कटाई के बाद बीज पर लक्षण सबसे आसानी से पाए जाते हैं अपशिष्ट पदार्थों से युक्त काला सोरस बीज के भाग पर स्पष्ट होता है, जो आमतौर पर नाली के साथ होता है। वैलेरियन बीज समूह होता है और पेरिकार्प आसानी से मोटा हो जाता है। आम बँच से जुड़ी सीनाट्य, मछली जैसी गंध करनाल बँट में भी पाई

जाती है। यह गंध कवक ट्राइमेथिलैमाइन द्वारा उत्पादित होता है।

रोग नियंत्रण

रोग निरोधक किस्में जैसे- एच डी 29, एच डी 2227, एच डी 30, पी बी डब्ल्यू 502, आदि का चुनाव करना चाहिए। गेहूँ का करनाल बंट रोग ग्रसित बालियों को उखाड़ कर पोलीबेग में भरकर खेत से बाहर नष्ट कर देना चाहिए ताकि स्पोर का स्थानान्तरण न हो सके। गेहूँ का करनाल बंट रोग के प्रबंधन हेतु फसल में ट्राइकोडर्मा विरिडी 6 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से पहला छिड़काव दाने बनने से पूर्व अवस्था में तथा प्रोपीकोनाजोल 25% इ.सी. 500ग्राम/750 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर खेत में घोलकर दूसरा छिड़काव दाने बनने की अवस्था के बाद लाभदायक होता है। कुछ रसायन जैसे थीरम 75% डब्लू.एस. @ 25-30 ग्राम/ लीटर पानी में स्लरी बनाकर या कार्बोक्सिन 75% डब्लू.पी. @ 2-2.5 ग्राम/ किग्रा. की दर से बोने से पहले बीज उपचार करे। गेहूँ का करनाल बंट रोग हेतु कुछ रसायन जैसे बितरटेनोल 25% डब्लू.पी.@ 2240 ग्राम/750 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर या प्रोपीकोनाजोल 25% इ.सी. (टिल्ट 0.1 प्रतिशत) @500 ग्राम /750 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर खेत में पुष्प निकलने की अवस्था में या प्रथम छिड़काव फरवरी के प्रथम सप्ताह में और दूसरा छिड़काव फरवरी के दूसरे सप्ताह में करना चाहिए।

निष्कर्ष

गेहूँ देश भर में उगाई जाने वाली एक प्रमुख फसल है। गेहूँ की फसल कई प्रकार के कीट एवं रोगों का संक्रमण होता है। जिसके कारण गेहूं का उत्पादन घट रहा है। गेहूँ का उत्पादन एवं उपज बढ़ाने के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए तथा कीट एवं रोगों की रोकथाम के लिए रासायनिक नियंत्रण की शुरूआत तभी करनी चाहिए जब रोग आर्थिक देहली स्तर को पार कर ले। गेहूँ की बुवाईइ करने से पहले अच्छी गहरी जुताई करनी चाहिए।

कीट एवं रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना चाहिए। वैज्ञानिकों द्वारा चयनित क्षेत्र में ही बीज का प्रयोग करना चाहिए एवं आवश्यकता अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए तथा इससे गेहूँ की फसल उचित प्रबन्धन एवं उपज में वृद्धि होगी।

संदर्भ

• Anonymous, (2021), Online Agriculture Statics. Http/www.faostal.org.

https://agritech.tnau.ac.in/crop_protection/wheat_disease.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीक के प्रयोग की सफलता

अंजना गुप्ता एवं आर. एल. राउत

कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट

पत्राचारकर्ताः blogger.sp2020@gmail.com

कुंजी

खाद्य कृषि संगठन (एफएओ)	कृषि रोबोट	ड्रोन
रिमोट मॉनिटरिंग	मैपिंग	इंटरनेट ऑफ थिंग्स (घ्दऊ)
जीपीएस	इनडोर कृषि	सैटेलाइट
ऊर्ध्वाधर खेती	मृदा सेंसर	

परिचय

आज विश्व में सबसे आवश्यक मुद्दा खाद्य आपूर्ति का है। पिछले 40 वर्षों में भोजन की माँग जनसंख्या वृद्धि दर से दोगुनी से भी अधिक बढ़ गई है। खाद्य कृषि संगठन (एफएओ) की एक रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक आबादी का 11% या 815 मिलियन लोग अल्पपोषित हैं और उनके पास अपने सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त भोजन भी नहीं है। लेख के माध्यम से यह बताया जा रहा है कि कैसे आधुनिक तकनीक कृषि क्षेत्र में बहुत मददगार रही है और यह अधिक और बेहतर गुणवत्ता वाले भोजन का उत्पादन करने में मदद कर रही है, जो बदले में जीवन को बनाए रखने में मदद कर रही है।

कृषि क्षेत्र में आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग

कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीक का उपयोग व्यापक है। इसने किसानों को विभिन्न तरीकों से मदद की है। नई और बेहतर प्रौद्योगिकियों को अपनाने से फसलों के उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि हुई है। इससे उत्पादन लागत कम करने में भी मदद मिली है. प्रौद्योगिकी के उपयोग ने खेती की प्रक्रिया को भी आसान और अधिक कुशल बना दिया है।

कृषि उद्योग में आधुनिक प्रौद्योगिकी

कृषि क्षेत्र में उपयोग की जाने वाली कुछ लोकप्रिय प्रौद्योगिकियाँ हैं, जो की निम्न हैंः

- **ड्रोनः** मैपिंग, सर्वेक्षण और फसल निगरानी के लिए ड्रोन का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। डेटा एकत्र करने में मदद करते हैं जिसका उपयोग कृषि गतिविधियों की योजना और कार्यान्वयन के लिए किया जा सकता है।
- **जीपीएस तकनीकः** सटीक खेती में जीपीएस तकनीक का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। यह खेत की सीमाओं का पता लगाने और उर्वरकों, कीटनाशकों और शाकनाशियों को सटीक रूप से लगानेध्छिडकने में मदद करता है। इससे बर्बादी कम होती है और कार्यक्षमता बढ़ती है।
- **सैटेलाइट इमेजराः** सैटेलाइट इमेजरी का उपयोग मौसम की भविष्यवाणी, फसल की निगरानी और उपज विश्लेषण के लिए किया जाता है। यह किसानों को सिंचाई, फसल पैटर्न आदि के संबंध में समय पर निर्णय लेने में मदद करता है।
- **स्वचालनः** बुआई, रोपाई, कटाई आदि जैसी कृषि प्रक्रियाओं में स्वचालन तकनीकों को व्यापक रूप से अपनाया गया है। इससे शारीरिक श्रम पर निर्भरता कम हुई है और दक्षता बढ़ी है।
- **प्वज् सेंसरः** प्वज् सेंसर का उपयोग मिट्टी की नमी की निगरानी, मौसम ट्रैकिंग आदि के लिए किया जा रहा है। यह जानकारी किसानों को सिंचाई, इनपुट आवेदन आदि के बारे में बेहतर निर्णय लेने में मदद करती है।
- **मृदा सेंसरः** मृदा सेंसर का उपयोग मिट्टी की नमी के स्तर, तापमान और फसल के विकास को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों को मापने के लिए किया जाता है। सेंसर द्वारा एकत्र किया गया डेटा किसान को वायरलेस तरीके से प्रेषित किया जाता है, जो उसके अनुसार अपनी खेती की पद्धतियों को समायोजित कर सकता है।
- **मौसम की निगरानीः** किसान अब वास्तविक समय के मौसम डेटा तक पहुँच सकते हैं जो उन्हें यह निर्णय लेने में मदद कर सकता है कि कब बीज बोना है, कैसे सिंचाई करनी है और किस प्रकार की फसल उगानी है। यह जानकारी मौसम ऐप्स या वेबसाइटों, या फार्म पर समर्पित मौसम स्टेशनों के

माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

• **कृषि रोबोटः** खेतों पर विभिन्न कार्यों को करने के लिए कृषि रोबोट विकसित किए जा रहे हैं, जैसे गायों से दूध दुहना, फल और सब्जियाँ चुनना और यहाँ तक कि घास काटना, ये काम रोबोट बिना थके लंबे समय तक कर सकते हैं और अक्सर मानव श्रमिकों की तुलना में बेहतर काम कर सकते हैं।

कृषि उद्योग में आधुनिक प्रौद्योगिकी का महत्व

कृषि में आधुनिक तकनीक से उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि हुई है। इससे किसानों के लिए खाद्य सुरक्षा और आय में सुधार हुआ है। इसके अलावा, इससे नई नौकरियाँ पैदा करने और ग्रामीण समुदायों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में मदद मिली है।

तकनीकी कृषि उत्पादकता में भढ़ोतरी

प्रौद्योगिकी ने कृषि उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए, मशीनीकरण के उपयोग ने शारीरिक श्रम की आवश्यकता को कम कर दिया है, जिससे दक्षता और उत्पादन में वृद्धि हुई है। सिंचाई प्रणालियों की शुरूआत ने भी शुष्क क्षेत्रों में फसलें उगाना संभव बनाकर उत्पादन को बढ़ावा देने में मदद की है। इसके अलावा, आधुनिक तकनीक ने अधिक उपज देने वाली फसल की किस्मों को विकसित करना संभव बना दिया है।

कृषि में प्रौद्योगिकी के उपयोग का भी खाद्य सुरक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। बढ़ते उत्पादन से यह सुनिश्चित करने में मदद मिली है कि अधिक लोगों को पौष्टिक और किफायती भोजन उपलब्ध हो सके।

प्रौद्योगिकी कृषि क्षेत्र में नई नौकरियाँ पैदा करने में भी मदद कर सकती है। उदाहरण के लिए, मोबाइल फोन और अन्य डिजिटल प्रौद्योगिकियों का उपयोग किसानों को बाजारों से जुड़ने और उपभोक्ताओं को सीधे अपने उत्पाद बेचने के नए अवसर प्रदान कर रहा है। इसके अलावा, कृषि -पर्यटन जैसी मूल्यवर्धित सेवाओं के विकास से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर पैदा हो रहे हैं।

किसानों पर कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभाव

हाल के वर्षों में, दुनिया भर के किसानों पर कृषि प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। तकनीक की मदद से किसान अब अपनी पैदावार बढ़ाने और पहले से कहीं अधिक फसल पैदा करने में सक्षम हैं। इसके अलावा, वे कम श्रम और कम लागत से आमदनी बढ़ा सकते हैं ।

हालाँकि, कृषि में प्रौद्योगिकी के उपयोग में कुछ समस्याए है कि इससे मशीनों और रसायनों पर अत्यधिक निर्भरता हो सकती है, जिसका रखरखाव महँगा पड सकता है। इसके अलावा, अगर इसका सही तरीके से इस्तेमाल न किया जाए तो यह पर्यावरण को भी नुकसान पहुँचा सकता है।

उपभोक्ताओं पर कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभाव

कृषि प्रौद्योगिकी ने उपभोक्ताओं को कई तरह से प्रभावित किया है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के उपयोग से किसानों को फसलों और पशुधन का उत्पादन बढ़ाने में मदद मिली है। इससे उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार करने में भी मदद मिली है। नई तकनीक के प्रयोग से उत्पादन लागत भी कम हुई है।

नई प्रौद्योगिकी को अपनाने से कृषि उत्पादों के विपणन और वितरण के नए तरीकों का विकास भी हुआ है। इससे किसानों को अपने उत्पादों के लिए व्यापक बाजार तक पहुँचने में मदद मिली है। प्रौद्योगिकी के उपयोग से कृषि क्षेत्र में नई नौकरियाँ पैदा करने में भी मदद मिली है।

कृषि पर आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रभाव

आधुनिक प्रौद्योगिकी ने कृषि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है और उद्योग में क्रांति ला दी है और उत्पादकता, दक्षता और स्थिरता में सुधार किया है। यहाँ कुछ प्रमुख तरीके दिए गए हैं जिनसे प्रौद्योगिकी ने कृषि को प्रभावित किया है।

1. सटीक खेतीः जीपीएस, रिमोट सेंसिंग और भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) जैसी प्रौद्योगिकियाँ किसानों को अपने खेतों के बारे में सटीक डेटा इकट्ठा करने में सक्षम बनाती हैं। यह डेटा उन्हें उर्वरकों, पानी और कीटनाशकों के उपयोग को अनुकूलित करने में मदद करता है, जिससे फसल की पैदावार में सुधार होता है और पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है।

2. स्वचालनः कृषि मशीनरी तेजी से स्वचालित मशीनों का उपयोग कर रही है, जिससे मैन्युअल श्रम की आवश्यकता कम हो रही है और दक्षता में सुधार हो रहा है। जीपीएस सिस्टम से लैस ट्रैक्टर खेतों में सटीकता से नेविगेट कर सकते हैं और स्वचालित मशीनरी फसलों की रोपाई, कटाई और छँटाई जैसे कार्य सटीकता और गति से कर सकती है।

3. रिमोट मॉनिटरिंगः इंटरनेट ऑफ थिंग्स (प्वज्) डिवाइस और सेंसर किसानों को उनके संचालन के विभिन्न पहलुओं की दूर से निगरानी करने की अनुमति देते हैं। वे मिट्टी की नमी के स्तर, तापमान, आर्द्रता और फसल के विकास पैटर्न को ट्रैक कर सकते हैं, जिससे उन्हें सिंचाई, कीट नियंत्रण और फसल

प्रबंधन के बारे में सूचित निर्णय लेने में मदद मिलती है।

4. जेनेटिक इंजीनियरिंग एवं जैव प्रौद्योगिकीः जैव प्रौद्योगिकी ने फसलों में रोग प्रतिरोधक क्षमता, सूखा सहनशीलता और उच्च पोषण मूल्य जैसे बेहतर लक्षणों के साथ आनुवंशिक रूप से संशोधित (जीएम) फसलों के विकास को जन्म दिया है। जैव प्रौद्योगिकी में फसलें पैदावार बढ़ाती हैं और कीटनाशकों का उपयोग कम करती हैं।

5. डेटा विश्लेषण समाधानः किसान अपनी कृषि पद्धतियों को अनुकूलित करने, जोखिमों को कम करने और मुनाफे को अधिकतम करने के लिए मौसम के पैटर्न, फसल के प्रदर्शन, मिट्टी की स्थिति और बाजार के रुझान पर डेटा का विश्लेषण कर सकते हैं।

6. ऊर्ध्वाधर खेती और इनडोर कृषिः प्रौद्योगिकी की मदद से, हाइड्रोपोनिक्स, एक्वापोनिक्स और ऊर्ध्वाधर खेती जैसी इनडोर खेती प्रणालियों ने लोकप्रियता हासिल की है। ये विधियाँ नियंत्रित वातावरण में साल भर खेती करने, जल और भूमि का संरक्षण करने और परिवहन लागत को कम करने की अनुमति देती हैं।

7. ड्रोन और सैटेलाइट इमेजरीः उच्च-रिजॉल्यूशन वाले कैमरों और सेंसर से लैस ड्रोन खेतों की विस्तृत तस्वीरें ले सकते हैं। ये छवियां फसल के स्वास्थ्य की पहचान करने, कीट और बीमारी के प्रकोप का पता लगाने और सिंचाई आवश्यकताओं का आकलन करने में मदद करती हैं। सैटेलाइट इमेज का एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है, जिससे किसानों को बड़े क्षेत्रों की निगरानी करने और डेटा-संचालित निर्णय लेने की सुविधा मिलती है।

8. फार्म प्रबंधन सॉफ्टवेयरः विशिष्ट सॉफ्टवेयर एप्लिकेशन किसानों को उनके कार्यों को कुशलतापूर्वक करने में सहायता करते हैं। ये उपकरण उन्हें कृषि सम्बन्धी की योजना बनाने और उन्हें ट्रैक करने, इन्वेंट्री प्रबंधित करने, वित्तीय विश्लेषण करने और लॉजिस्टिक्स को सुव्यवस्थित करने, समग्र कृषि प्रबंधन में सुधार करने में सक्षम बनाते हैं।

कुल मिलाकर, आधुनिक तकनीक ने कृषि को बदल दिया है, इसे अधिक उत्पादक, टिकाऊ और लचीला बना दिया है। इन तकनीकों का लाभ उठाकर, किसान अपने संसाधनों का अनुकूलन कर सकते हैं, पर्यावरणीय दुष्प्रभाव को कम कर सकते हैं और तेजी से बदलती दुनिया में भोजन की बढ़ती माँग को पूरा कर सकते हैं।

निष्कर्ष

आधुनिक तकनीक के प्रयोग से कृषि उत्पादकता कई गुना बढ़ गई है। वास्तव में, यह उन कुछ क्षेत्रों में से एक है जहाँ श्रम -बचत उपकरणों का पूरी तरह से उपयोग किया गया है। आज एक किसान कई पुरुषों और महिलाओं का काम मशीनों की मदद से कर सकता है। इससे न केवल समय की बचत होती है बल्कि लागत भी कम होती है और उत्पादन भी बढ़ता है।

❖❖

Pen to a Book

A Small journey from a pen to a book,
keeping the thoughts with their struggle.

STEP TO A STEP FOR PUBLICATION

1. SUBMIT YOUR BOOK ON OUR PORTAL OR SEND US ON E-MAIL
2. GET THE ISBN NUMBER
3. PUBLISH YOUR BOOK IN A E-BOOK PORTAL ALONG WITH FEW HARD COPIES
4. GET THE ROYALTY

agro India

Agro India Publications
Add. 5, Vivekananda Marg
Opp. Hotel R INN
Prayagraj – 211003

: 7505907954/9565006333
agroindiapublications@gmail.com

ISSN No. 2583-3316

आंवला की खेतीः महत्व, उपयोग एवं उत्पादन

ओमवीर सिंह, रत्ना राय एवं गोपाल मणि*

उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर

पत्राचारकर्ताः gaurgm97@gmail.com

परिचय

आंवला हमारे देश में प्राचीन काल से ही एक बहु-उपयोगी, गुणकारी व लोकप्रिय फल है। जहाँ पोषक तत्वों व औषधीय गुणों से भरपूर होने के कारण आयुर्वेद में इसका अपना एक प्रमुख स्थान हैं, वहीं वेदो के अनुसार इसके पेड़ो में देवी देवताओ का वास होता है, जिससे पूरे भारतवर्ष में इसकी पूजा भी होती है और इसके विशेष गुणों के कारण इसे अमृत फल के नाम से भी जाना जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम *एम्ब्लिका ऑफिसिनैलिस* और यह फ़ाइलैन्थेसी परिवार का सदस्य है।
भारत में व्यवसायिक स्तर पर इसकी बागवानी मुख्यतः उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़, आजमगढ़, वाराणसी, सुल्तानपुर, रायबरेली तथा बरेली आदि क्षेत्रों में की जाती है। समान्यतः इसके फलों को ताजे फल मुरब्बा, अचार, चटनी बनाने में प्रयोग होते हैं। आंवला का अचार बहुत स्वादिष्ट एवं गुणकारी होता है। आंवला का पैक्टिन जैली बनाने के लिए काफी मात्रा में प्रयुक्त किया जाता है। फलों का इस्तेमाल स्याही बनाने, केश रंगों, शैम्पू व विभिन्न प्रकार के सौंदर्य प्रसाधन आदि को बनाने में भी किया जाता है। आंवला के फल से तेल भी निकाला जाता है, जो बालों में अनेक रूप से प्रयोग किया जाता है।

चित्रः आंवला वृक्ष एवं परिपक्व फल

औषधीय महत्व

आंवला का फल कई प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियाँ बनाने के काम में प्रयोग होता है। आंवला 'च्यवनप्राश' का मुख्य घटक है। यह चरक-सुश्रुत की प्राचीन आयुर्वेदिक पद्धति से लेकर आधुनिक आयुर्विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। इससे निर्मित 'त्रिफला' आंख और उदर रोगों में रामबाण है। सूखे फल अतिसार, दस्त, पीलिया, कफ तथा मधुमेह आदि रोगों के लिए गुणकारी होते हैं। शरीर में कोलेस्ट्राल की मात्रा को नियंत्रित करने के लिए चिकित्सक आंवला खाने का सुझाव देते हैं। आंवला का बीज दमा और श्वसन रोगों के उपचार में प्रयोग होता है।

पौष्टिक महत्व

आंवला के फल में 80 प्रतिशत नमी, 0.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0.1 प्रतिशत वसा, 0.7 प्रतिशत खनिज लवण, 3.4 प्रतिशत रेशा, 14.1 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.05 प्रतिशत कैल्शियम, 0.02 प्रतिशत फॉस्फोरस और 1.2 मिग्रा प्रति 100 ग्राम लोहा पाया जाता है। भारतीय फलों में आंवला में सबसे अधिक मात्रा में विटामिन सी (500-700 मिग्रा प्रति 100 ग्राम गूदा) पायी जाती है।

बागवानी क्रियायें

भूमि और जलवायु

आंवला प्रत्येक प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है लेकिन गहरी तथा उपजाऊ दोमट भूमि, जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, आंवला की बागवानी के लिए सर्वोत्तम होती है। यह शुष्क क्षेत्रों एवं क्षारीय भूमि में भी उगाया जा सकता है। आंवला यद्यपि उपोष्ण जलवायु का फल है, परन्तु इसकी पैदावार उष्ण जलवायु में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। अधिक गर्म हवायें एवं पाला आंवला के लिए हानिकारक होता है। चार वर्ष तक के नए पेड़ों को गर्मियों में गर्म हवाओं से तथा जाड़ों में पाले से बचाना चाहिए। गर्म हवा फल विकास में हानिकारक होती है।
आवंला के पेड़ समुद्र तल की ऊँचाई वाले स्थानों से लेकर 1800 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में उगते पाये जाते हैं। आंवला का पेड़ उत्तर भारत में फरवरी-मार्च तक सभी पत्तियाँ गिरा देता है परन्तु बसन्त आते ही इसमें नई कोपले निकलना प्रारम्भ हो जाती हैं।

किस्में

देश की विभिन्न भौगोलिक परिस्थियों के अनुसार आंवला की बहुत सी व्यावसायिक किस्मों का विकास कृषि विश्वविद्यालयों एवं अनुसन्धान संस्थानों द्वारा किया गया है, जिनमें पन्त आंवला-1, बनारसी, फ्रांसिस, चकैइया, एनए-4, एनए-5, एनए-6, एनए-7, एनए-9, एनए-10 (बलवन्त), आनंद-1, आनंद-2, बीएसआर-1, बीएसआर 2, गोमा ऐश्वर्या और लक्ष्मी 52 मुख्य हैं एवं कुछ मुख्य किस्मों का विवरण निम्नवत है-

बनारसी

इस किस्म के पेड़ों की डालियां ऊपर की ओर बढ़ती हैं। फलों का व्यास लगभग 4 सेमी तथा भार 40-50 ग्राम तक होता है। फलों की लम्बाई लगभग 4 सेमी. होती है। इसके फल जल्दी पकने वाले तथा लम्बे समय तक भंडारित किए जा सकते हैं। फल चमकीला पीलापन लिए हुए होता है और मुरब्बा बनाने के लिए उत्तम पाया गया है। फल का छिलका पतला तथा पारदर्शक होता है। गूदे के रेशे की मात्रा बहुत कम होती है। इसके पेड़ों में मादा फूलों की संख्या कम होती है। यह आंवले की सबसे अधिक प्रचलित किस्म है।

फ्रांसिस

इसके फल गोल, अण्डाकार तथा आकार में बड़े होते हैं। फलों का व्यास 5 सेमी तथा भार 50-60 ग्राम होता है। फल हरी-पीला रंग लिए हुए, गूदा मुलायम और रेशाहीन होता है। फल साधारणतः लम्बाई में छः हिस्सों में सफेद धारियों में बटे होते हैं। यह किस्म आंतरिक ऊतकक्षय रोग से प्रभावित होती है।

चकैइया

इस किस्म में पेड़ों में फैलाव अधिक होता है। यह नियमित तथा अधिक फलने वाली किस्म है। इसके फलों के निचले व ऊपरी सिरे कुछ अधिक चैड़े होते हैं। फलों की लम्बाई 3 से 3.5 सेमी, व्यास लगभग 3.2 सेमी तथा भार 3 ग्राम होता है। फल सुदृढ़ तथा भंडारण क्षमता अच्छी होती है।

कंचन (एन.ए. 4)

फल मध्यम आकार के, 30-32 ग्राम भार वाले होते हैं। इसके फलों में 1.5 प्रतिशत रेशा, 11.3 प्रतिशत सम्पूर्ण घुलनशील पदार्थ, 2.2 प्रतिशत अम्ल व विटामिन सी 711 मिग्रा प्रति सौ ग्राम गूदा होती है। इसके फल बाजार में मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर तक उपलब्ध हो जाते हैं। फलों को छः दिनों तक कमरे के तापमान पर तथा 15 दिनों तक शून्य ऊर्जा शीत प्रकोष्ठ में रखा जा सकता है। इसके फलों का अचार, मुरब्बा तथा सीरप बनाया जाता है। आठ वर्ष का पेड़ 74 किग्रा तक फल देता है।

कृष्णा (एन. ए. 5)

यह जल्दी पकने वाली किस्म है। फल बड़े आकार के (39.42 ग्राम) व गूदा 93 प्रतिशत तक होता है। इसके फलों में 1.4 प्रतिशत रेशा, 1.4 प्रतिशत सम्पूर्ण घुलनशील पदार्थ, 2 प्रतिशत खटाश और विटामिन सी 78.3 मिग्रा प्रति 100 ग्राम गूदा होती है। फलों को लगभग छः दिनों तक कमरे के तापमान पर और 12 दिनों तक शून्य ऊर्जा शीत प्रकोष्ठ में रखा जा सकता है।

अमृत

यह मध्यम समय में पकने वाली किस्म है। फल मध्यम आकार (3.5-3.7 ग्राम) के और चमकीलापन लिए होते हैं। इसके फल में 94 प्रतिशत गूदा, 0.8 प्रतिशत रेशा, 11 प्रतिशत सम्पूर्ण घुलनशील पदार्थ, 1.7 प्रतिशत अम्ल व विटामिन सी 700 मिग्रा प्रति 100 ग्राम गूदा होती है। फल दिसम्बर में पकते हैं। आठ वर्ष के पेड़ की औसत उपज 56 किग्रा है। फलों को कमरे के तापमान पर 8 दिनों तक तथा शून्य ऊर्जा शीत प्रकोष्ठ में 18 दिनों तक रखा जा सकता है। अमृत कैंडी, जैम व अचार बनाने के लिए सर्वोत्तम है।

नीलम (एन. ए. 7)

यह देर से पकने वाली किस्म है। फल मध्यम से बड़े आकार (35-39 ग्राम) के होते हैं। इसमें 93 प्रतिशत गूदा होता है। इसके फल में 0.8 प्रतिशत रेशा, 1.9 प्रतिशत खटास और विटामिन सी 788 मिग्रा प्रति 100 ग्राम गूदा होती है। आठ वर्ष के पौधे की औसत उपज 62 किग्रा होती है। इसके फल जैम, चटनी एवं च्यवनप्राश बनाने में उपयोगी होते हैं।

गोमा ऐश्वर्या

गोमा ऐश्वर्या शीघ्र परिपक्वता, सूखा अवरोधी एवं अधिक उपज देने वाली एक फलदार किस्म है, जिसका पेड़ अर्ध फैलाकार और फल मध्यम आकार के होते हैं। इसमें फाइबर की मात्रा कम होती है और यह प्रसंस्करण और निर्यात के लिए उपयुक्त है। फलों में 47.00 प्रतिशत रस, गूदाः बीज का अनुपात 26.65 होता है। टीएसएस 10 प्रतिशत और विटामिन सी की मात्रा 554.78 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम होती है।

आनंद-1

पेड़ ऊँचे एवं सीधी वृद्धि वाले होते हैं। फल छोटे से मध्यम, त्वचा थोड़ी खुरदरी और मोटी होती है, और गूदा रेशेदार और सख्त होते है। रखाव क्षमता मध्यम गुणवत्ता वाली और फल पाउडर और अचार बनाने के लिए उपयुक्त होते हैं।

लक्ष्मी-52

यह उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में किसान के खेत से फ्रांसिस किस्म का ही एक चयन है। पेड़ अर्ध-खड़े प्रकार के, नियमित फलन वाले एवं फल बड़े आकार के होतें हैं। प्रारंभिक अवस्था में के दौरान फलों का रंग हल्का गुलाबी होता है, जो पूर्ण विकास पर गायब हो जाता है।

पादप प्रवर्धन

आंवला के पौधे बीज एवं वानस्पतिक दोनों ही विधियों से तैयार किये जा सकते हैं।

बीज द्वारा

बीज द्वारा तैयार पौधे मातृवृक्ष के समान गुण वाले नहीं होते हैं। इनके फल छोटे आकार के तथा कम गुणवत्तायुक्त होते हैं। नवम्बर-दिसम्बर में पूर्णरूप से विकसित फलों से बीजों को निकाल कर छाया में सुखाना चाहिए। स्वस्थ बीजों का चुनाव करने के लिए बीजों को पानी में डाल देते हैं, जो बीज पानी में बैठ जाते हैं वे ही बुआई के लिए उपयुक्त होते हैं। बीजों को नर्सरी क्यारियों या गमलों में फरवरी-मार्च में बोया जाता है। जब पौधे 20-25 सेमी तक ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं तब उन्हें नर्सरी क्यारी में रोपित कर देना चाहिए।

वानस्पतिक विधि द्वारा

बीजू पेड़ों द्वारा उत्पादित फल छोटे आकार के व कम गुणवत्तायुक्त होते हैं जबकि कलमी पौधों से उच्चकोटि के फल प्राप्त होते हैं। कलमी पौधे मुख्यतः चश्मा चढ़ाकर तैयार किये जाते हैं।

चश्मा विधि

साधारणतः चश्मा चढ़ाने के लिए पैबन्दी चश्मा विधि प्रयोग की जाती है। चश्मा चढ़ाने का उपयुक्त समय जून से सितम्बर माह है। इस विधि द्वारा 80 से 85 प्रतिशत सफलता प्राप्त होती है।

पौधा लगाना

सबसे पहले खेत को गहरा जोतकर उस पर हैरो चलाने के बाद उसे समतल कर देना चाहिए। पौधा लगाने से 2-3 महीने (अप्रैल-जून) पूर्व एक घन मीटर आकार के गड्ढे 8 मीटर की दूरी पर खोद लिए जाते हैं। गड्ढों को लगभग 1 महीने तक धूप में खुला छोड़ देते हैं ताकि खरपतवार के बीज और कीट-रोग नष्ट हो जाएं। प्रत्येक गड्ढे में 10-15 किग्रा सड़ी गोबर की खाद ऊपरी परत की मिट्टी में मिलाकर भर देते हैं। जब गड्ढों की मिट्टी पूरी तरह बैठ जाए तो पौधे लगाने का कार्य करना चाहिए। आंवला के कलमी पौधों को मिट्टी की पिण्डी सहित 8 मीटर की दूरी पर जून-जुलाई में रोपते हैं। रोपते समय पौधों की पिण्डी को मिट्टी से अच्छी तरह दबा देते हैं। इसके तुरन्त बाद इसकी सिंचाई कर देते हैं। जहाँ सिंचाई की उचित सुविधा हो, वहाँ पौधे फरवरी-मार्च में भी लगाए जा सकते हैं।

खाद और उर्वरक

उच्च कोटि के अधिक मात्रा में फल प्राप्त करने के लिए खाद और उर्वरकों का उचित मात्रा में प्रयोग करना आवश्यक है। पौधे लगाने के एक वर्ष बाद प्रत्येक पौधे को 15-20 किग्रा सड़ी गोबर की खाद व 50 ग्राम नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की मात्रा पौधे की उम्र के साथ प्रति वर्ष बढ़ाई जाती है। इस प्रकार 10 वर्ष तक प्रत्येक पौधे को 50 ग्राम नाइट्रोजन बढ़ाकर देनी चाहिए। पूर्ण विकसित पेड़ को 30-40 किग्रा सड़ी गोबर की खाद, 1 किग्रा यूरिया, 2 किग्रा एकल सुपर फास्फेट, 1.0-1.5 किग्रा म्यूरेट आफ पोटाश प्रतिवर्ष देने से अच्छा फलोत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। पहली मात्रा अप्रैल-मई में तथा दूसरी मात्रा सितम्बर-अक्टूबर में देनी चाहिये। खाद और उर्वरकों को देने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिए।

सिंचाई

आंवला के पेड़ों को बरसात में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन लगातार सूखा होने पर सिंचाई करनी चाहिए। नए पौधों को गर्मी में प्रत्येक 15 दिन में और परिपक्व फलदार पौधों को दो सप्ताह के अन्तराल पर अप्रैल से जून के बीच में सिंचाई करनी चाहिए।

फल विकास

आंवला के पेड़ दिसंबर के बाद से अपनी पुरानी शाखाओं को गिराना शुरू कर देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप जनवरी के अंत तक पूरी तरह से पतझड़ हो जाता है। पश्चिमी भारत में फरवरी की शुरुआत से फूलों की नई टहनियाँ दिखाई देने लगती हैं, जो मार्च के अंतिम सप्ताह तक जारी रहती हैं। फल लगने के बाद, भ्रूण निष्क्रिय रहता है और अंडाशय जून तक बाहरी वृद्धि का कोई स्पष्ट संकेत प्रदर्शित नहीं करता है। हालांकि, अगस्त के दूसरे पखवाड़े से सितंबर के अंतिम सप्ताह के बीच बरसात के मौसम में फल तेजी से बढ़ता है और इस अवधि के दौरान लगभग 70 प्रतिशत वृद्धि पूरी करता है।

कटाई-छटाई

आंवला के पेड़ को नियमित छंटाई की आवश्यकता नहीं होती है, लेकिन शुरुआती वर्षों में उचित आकार और मजबूत फ्रेम

के विकास के लिए आवश्यक है कि युवा पौधों को लगभग 0.75 मीटर की ऊँचाई तक एकल तने रखा जाए और 4-6 शाखाओं को नियमित दूरी व कोण पर बढ़ने देना चाहिए। पौधों को रूपान्तरित अग्रप्ररोह प्रणाली के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। फसल की कटाई के बाद मृत, संक्रमित, टूटी हुई, कमजोर या सटी शाखाओं को हटाना देना चाहिए।

फलों की तुड़ाई एवं उपज

आंवला का पेड़ 4-5 वर्ष बाद फल देना प्रारम्भ करता है। प्रारम्भ में फल हरे रंग का होता है, जो पकने पर हरापन लिए पीला हो जाता है। जब फल पूर्णरूप से परिपक्व हो जाए तो उन्हें तोड़ लेना चाहिए। किस्म के अनुसार फल नवम्बर-जनवरी में तोड़ने योग्य हो जाते हैं। फरवरी माह में तोड़े जाने वाले फलों में सर्वाधिक विटामिन सी होता है। फलों को देर से तोड़ने पर एकांतर फलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। एक पूर्ण विकसित पेड़ से एक वर्ष में औसत 100 किग्रा फल प्राप्त किये जा सकते हैं। एनए-7 और बनारसी के फल अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक पक जाते हैं, जबकि कंचन और चकैया के फल नवंबर के अंतिम सप्ताह तक तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। इसके अलावा, आनंद -1 और आनंद -2 नवंबर के फल अंतिम सप्ताह तक परिपक्व हो जाते हैं। आंवला के फलों को परिपक्वता की तारीख से पेड़ पर ही 30 दिनों तक बिना गुणवत्ता में ह्रास के भंडारित किया जा सकता है।

तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन

फसल तुड़ाई के बाद कक्ष परिवेश के तापमान पर चकैया और आनंद-2 किस्म की 7 दिन, जबकि फ्रांसिस, एनए-7 और बनारसी की 5 दिनों की रखाव क्षमता होती है। हालांकि, नमक के 15 प्रतिशत घोल में आंवला के फलों को 75 दिनों तक भंडारित किया जा सकता है। 10 डिग्री सेल्सियस के शीत भण्डारण के तापमान को फलों के वजन एवं विटामिन सी में सबसे कम हानि, कम क्षतिग्रस्त एवं उच्च विपणक योग्य फलों की दृष्टि से सबसे अच्छा स्टोरेज पाया गया है।

आंवला फलों की रखाव क्षमता को ग्रेडिंग, पैकेजिंग, तुड़ाई से पहले और बाद में प्राकृतिक एवं रासायनिक उपचारों द्वारा बढ़ाया जा सकता है। तुड़ाई के बाद, बाजार से बेहतर कीमत प्राप्त करने के लिए फलों को उनके आकार और शक्ल के अनुसार वर्गीकृत किया जाना चाहिए। एक ग्रेड के बड़े आकार के फल मुरब्बा और कैंडी बनानें, बी ग्रेड के छोट फलों च्यवनप्राश और त्रिफला और सी ग्रेड के फल पाउडर, तेल व शैम्पू बनाने के लिए उपयोग किए जाते हैं।

हानिकारक कीट और रोग

कीट

शूट गाल मेकर

इस कीट का प्रकोप वर्षा के मौसम में पौधे की नई शाखाओं पर होता है। इस कीट की सूंड़ी शीर्ष भाग में छेद कर भीतर घुस जाती है, जिससे शाखाओं का शीर्ष भाग बढ़ना बंद कर देता है और शीर्ष कलिका मर जाती है। कीट की रोकथाम हेतु प्रभावित भागों को काटकर निकाल देना चाहिए।

बार्क ईटिंग कैटरपिलर

लार्वा आमतौर पर टहनी और मुख्य तने के बीच के जोड़ में छेद करते हैं और तने पर सीधे नीचे की ओर सुरंग बनाते हैं। लार्वा के मलमूत्र से युक्त रेशमी जाल का बनना क्षति को इंगित करता है।

रोकथाम

छाल खाने वाले कैटरपिलर और बोरर्स के लिए बाग की सफाई अत्यन्त आवश्यक है। प्रभावित भाग में मिट्टी के तेल, पेट्रोल या डाइक्लोरवोस डालना चाहिए और छाल खाने वाले कैटरपिलर के प्रभावी नियंत्रण के लिए छेद को मिट्टी से भर दें। त्रि-साप्ताहिक अंतराल पर डाइमेथोएट (0.05 प्रतिशत) का फोलियर छिड़काव कीटों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करता है।

रोग

एन्थ्रेकनोज

इस रोग में फलों पर वृत्ताकार, दबे हुए, काले भूरे रंग के कवक के गोलाकार धब्बे पाये जाते हैं। इसके रोग प्रबंधन के लिए मैनकोजेब 75 डब्ल्यू या कैप्टाफ (0.2 प्रतिशत) या 0.2 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड सांद्रता का छिड़काव करें।

गेरूई रोग

आंवले में गेरूई रोग एक प्रमुख समस्या है। प्रारम्भ में पत्तियाँ गिर जाती हैं और फलों का विकास रूक जाता है। फल विकसित हुए बगैर गिर जाते हैं। इसको नियंत्रित करने के लिए घुलनशील सल्फर (0.5 प्रतिशत) के तीन छिड़काव एक माह के अन्तराल पर जुलाई माह से प्रारम्भ करने चाहिए।

श्यामवर्ण रोग

इस रोग के प्रारम्भ में पत्तियों पर छोटे, गोल, भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जिनकी परिधि पीले रंग की होती है। धब्बे का मध्य भाग स्लेटी रंग का जिस पर गहरे रंग के छोटे-छोटे उभार नजर आते हैं। फलों पर धंसे हुए धब्बे बनते हैं जो बाद में गहरे रंग के हो जाते हैं। इनके मध्य में काले छोटे उभार बनते हैं। बाद में फल सिकुड़ कर सड़ जाते हैं।

आंतरिक ऊतक क्षय रोग

यह रोग बोरॉन की कमी से होता है। हाथीझूल किस्म इससे अधिक प्रभावित होती है। प्रभावित फलों का गूदा काला पड़ जाता है। इसको नियंत्रित करने के लिए सितम्बर माह में 10 दिन के अंतराल पर 0.6 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव करना चाहिए।

नैक्रोशिश

नेक्रोसिस आंवला के फलों में एक दैहिक विकार है, जो बोरॉन की कमी से होता है। विकार मीजोकार्प के भूरे होने के साथ शुरू होता है, और एपिकार्प की ओर फैलता है, जिसके परिणामस्वरूप गूदे का रंग भूरा काला सा दिखाई देता है। इसे सितंबर की शुरुआत से 15 दिनों के अंतराल पर 0.6 प्रतिशत पर बोरेक्स के तीन छिडकाव (स्प्रे) से नियंत्रित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

आंवला वृक्षों के अनुपयोगी भूमि में भी पैदा होने की क्षमता, प्रति इकाई क्षेत्र में उच्च उत्पादकता एवं अपने उच्च औषधीय और पोषण मूल्य के कारण यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण फल है। वैकल्पिक चिकित्सा, स्वस्थ खाद्य पदार्थ और हर्बल उत्पादों की बढ़ती लोकप्रियता के कारण आंवला के फलों की आवश्यकता दिन प्रतिदिन बढ रही है। आंवला के फलों में विटामिन सी, टैनिन, प्रोटीन, वसा, फाइबर, स्टार्च, शर्करा और खनिज प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसमें प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन की अपार संभावनाएं हैं क्योंकि अत्यधिक अम्लीय और कसैले होने के कारण फलों का सेवन ताजा या कच्ची अवस्था में नहीं किया जाता है। हालांकि आंवला की खेती भारत में क्षेत्र विशेष में अच्छी तरह से स्थापित है, परन्तु आर्थिक रूप से निरंतर उत्पादन हेतु तकनीकी के नवीनीकरण एवं तुड़ाई के बाद की देखभाल में निरन्तर सुधार आवश्यक है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

भविष्य में संरक्षित खेती का महत्व

अंकित सिंह, शशि बाला, शिवराज कुमार वर्मा एवं सुनील कुमार सिंह

उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी

पत्राचारकर्ता: ankitp13on@gmail.com

परिचय

भारत दुनिया में फल एवं सब्जी फसलों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। हालाँकि, यदि प्रत्येक व्यक्ति को संतुलित आहार उपलब्ध कराया जाए तो इसका उत्पादन आवश्यकता से बहुत कम है। खुले मैदान में बागवानी फसले उगाने की तुलना में ग्रीनहाउस में उत्पादकता कई गुना अधिक प्राप्त होती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति के संतुलित आहार उपलब्धता के अंतराल को संरक्षित खेती के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। आज के दृश्य में हम देखे तो भारत जनसंख्या में पहले पायदान पर है इस बढते जनसंख्या का भरण पोषण करना एक बड़ी चुनौती है क्योंकि सीमित क्षेत्रफल, बड़े पैमाने पर शहरीकरण और तेजी से औद्योकीकरण, सीमित प्राकृतिक संसाधन, सतत विकास की अवधारणा को भी प्रभावित करता है इन सभी चुनौतियों को देखते हुए संरक्षित खेती को एक विकल्प के रूप में देखा जा सकता है।

विदित है की पिछले कुछ दशकों में जलवायु की अनिश्चता, संरक्षित खेती के प्रति आकर्षण एवं जागरूकता, गुणवत्तायुक्त उत्पाद की बाज़ार मे माँग, अनेको प्रकार के सरकारी अनुदान की व्यवस्था ने संरक्षित खेती के प्रचलन को उत्तर भारत में बढ़ावा मिला है। संरक्षित खेती से तात्पर्य ग्रीनहाउस जैसे बंद या आंशिक रूप से बंद वातावरण में फसल उगाने की अभ्यास से है। संरक्षित खेती का प्राथमिक उद्देश्य एक नियंत्रित माइक्रॉक्लाइमेट बनाना है, जो पर्यावरणीय कारकों को अनुकूलित करते हुए फसलों को प्रतिकूल मौसम की स्थिति, कीटों और बीमारियों से बचाता है। इसमें संरचनाओं, सामग्रियों और प्रौद्योगिकियों का उपयोग शामिल है, जो एक सुरक्षात्मक घेरा प्रदान करते हैं और तापमान, आर्द्रता, प्रकाश और अन्य में हेरफेर की अनुमति देते हैं। यह विधि साल भर या असमय खेती करने में सक्षम बनाती है, उद्यानिक फसलो की उपलब्धता को भी बढ़ाती है, साथ ही साथ फसल की गुणवत्ता और उपज बढ़ाती है और बाहरी कारकों पर निर्भरता को कम करती है। सब्जियों, फलों, फूलों और जड़ी-बूटियों सहित विभिन्न बागवानी फसलों के उत्पादन में संरक्षित खेती का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

संरक्षित खेती के सिद्धांत

सूरज की रोशनी से निकला थर्मल विकिरण लधु तरंग है जिसकी बेधक क्षमता अधिक होती है जब वो ग्रीनहाउस के ऊपर पड़ती है तो वो बेध कर ग्रीनहाउस के अंदर जा कर फसल, फर्श और अन्य वस्तुएं द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। बदले में ये वस्तुएं लंबी तरंग थर्मल विकिरण उत्सर्जित करती हैं जिससे यह तरंग ग्रीनहाउस के कवर को बेध कर बाहर नहीं आ पाती है। इसके परिणामस्वरूप सौर ऊर्जा फंस जाती है, जिससे ग्रीनहाउस के अंदर का तापमान बढ़ जाता है।

नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) के, बागवानी फसलों की संरक्षित खेती के तहत वैश्विक क्षेत्र 2023 में लगभग 623,302 हेक्टेयर होने का अनुमान लगाया गया था, जिसमें चीन का सबसे बड़ा हिस्सा (45%) था। अन्य प्रमुख संरक्षित खेती के उत्पादकों में तुर्की, स्पेन, इटली और जापान शामिल हैं। भारत में बागवानी फसलों की संरक्षित खेती का क्षेत्र लगभग 11 हजार हेक्टेयर है। जिसमें अग्रणी राज्य महाराष्ट्र, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक और पंजाब हैं। बागवानी फसलों की संरक्षित खेती से खुले खेत की तुलना में अधिक पैदावार और बेहतर गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त होती है।

संरक्षित खेती के तहत बागवानी फसलों का वैश्विक उत्पादन लगभग 150 मिलियन टन होने का अनुमान है। संरक्षित खेती के अंतर्गत उत्पादित प्रमुख फसलों में सब्जियाँ शामिल हैं (टमाटर, खीरा, मिर्च, लेट्यूस, सलाद वाली फसले, आदि), फल (स्ट्रॉबेरी, रसभरी, ब्लूबेरी, आदि), और फूल (गुलाब, जरबेरा, ऑर्किड, कारनेशन, लिलियम, आदि)। भारत में प्रमुख बागवानी फसलें संरक्षित खेती के तहत उत्पादित टमाटर, खीरे, शिमला मिर्च, गुलाब और जरबेरा आदि शामिल हैं।

टेक्निकल बुलेटिन (2015)

संरक्षित खेती के लाभ

- वर्ष भर सब्जी उत्पादन किया जा सकता है।
- प्रतिकूल जलवायु में भी विभिन्न प्रकार की संरक्षित उत्पादन प्रणालियों के सहायता से पूरे वर्ष उद्यानिकी फसलों को प्राप्त

संरक्षित खेती के अंतर्गत फसलों की जलवायु संबंधी आवश्यकताये

फसल	तापमान (ºC)		आर्द्रता (%)	प्रकाश की तीव्रता (लक्स)
	दिन	रात		
टमाटर	22-27	15-19	50-65	50000-60000
खीरा	24-27	18-19	60-65	50000-60000
शिमला मिर्च	21-24	18-20	50-65	50000-60000
नर्सरी	22-27	16-19	50-65	50000-60000
कारनेशन	16-20	10-12	60-65	40000-50000
गुदावाली (कट फ्लावर)	22-24	15-16	60-65	35000-40000
(पॉट)	23-26	16-19	60-65	35000-40000
जरबेरा	20-24	18-21	60-65	40000-50000
आर्किड	22-24	18-20	70-80	25000-30000
एन्थुरियम	22-25	18-20	70-80	25000-30000
रोज	24-28	18-20	65-70	60000-70000

किया जा सकता है।

• बेमौसमी फसलों का उत्पादन करके अच्छा मुनाफा प्राप्त किया जा सकता है।

• खुले मैदान में लगाए जाने वाले उच्च गुणवत्ता और स्वस्थ फसलों के पौधों का उत्पादन, जो फसल को जल्दी परिपक्व, मजबूत और प्रतिरोधी बनाने में सार्थक होते है।

• संरक्षित खेती के उपयोग से भूमि, जल, ऊर्जा और श्रम की प्रति इकाई उत्पादकता और उत्पादन में वृद्धि होती है। यह उच्च गुणवत्ता और स्वच्छ उत्पादों के उत्पादन को किया जा सकता है।

• यह उन क्षेत्रों में खेती के संभवना को सफल बनाता है जहां खुले क्षेत्रों, गर्म-ठण्ड रेगिस्तानों में खेती करना संभव नहीं है।

• संरक्षित खेती के द्वारा हम कीट एवं बीमारी मुक्त उत्पादो को प्राप्त किया जाता है।

• संरक्षित खेती के माध्यम से फसलो के निर्धरित अंतर्राष्ट्रीय मानको को प्राप्त किया जा सकता है, जिससे फसलों को अच्छे मूल्य पर निर्यात करके मुनाफा कमाया जा सकता है।

• संरक्षित खेती में रोजगार का सृजन होता है।

• कीटनाशकों के बिना पौष्टिक एवं स्वस्थ भोजन और गुणवत्ता वाली सब्जियों का उत्पादन करने की आवश्यकता को पूरा करने के लिए संरक्षित तकनीक खेती की क्षमता का पूरी तरह से उपयोग किया जा सकता है।

सीमाएँ

• ग्रीनहाउस को विकसित करने में शुरूआती खर्च महँगा पड़ता है, जिसके आवरण सामग्री की अनुपलब्धता बनी रहती है।

• संरक्षित खेती के लिए कुशल व्यक्ति की आवश्यकता होती है।

• संरक्षित संरचनाओं के अंतर्गत फसलें उगाने के तकनीकी ज्ञान का अभाव है।

• संरक्षित खेती के अंतर्गत सभी ऑपरेशन बहुत गहन होते हैं और निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है।

• ग्रीनहाउस की मरम्मत एवं रखरखाव एक बड़ी समस्या हैं।

निष्कर्ष

भविष्य में नाना प्रकार के प्रतिकूल परिस्थिति के प्रति जैसे जलवायु परिवर्तन, नये कीटो एवं रोगों आगमन, उपभोक्ताओं की माँग को पूरा करने के लिए, उच्च गुणवत्तायुक्त उत्पाद, प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग, मृदा के स्वास्थ का रख-रखाव जैसी समस्या से निदान पाने के लिए संरक्षित खेती का योगदान महत्वपूर्ण रहेगा।

संदर्भ

• वी.के सिंह, अनुराग सिंह और नीरज कुमार शुक्ला (2015). तकनीकी बुलेटिनज्बागवानी फसलों में संरक्षित खेती, आईसीएआर-सीआईएसएच

• एनोनिमस (2022). संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ)

❖❖

ISSN No. 2583-3316

बढ़ते शहरीकरण में ऊर्ध्वाधर उद्यान की महत्वता

देवांशु शुक्ला[1] , कृष्णा कौशिक[2] , कुशल चतुर्वेदी[3] , मनीष कुमार[4] एवं मौ. वामिक[5]

[1एवं 2]पुष्प विज्ञान एवं भू–परिष्कृत बागवानी विभाग, [3]कीट विज्ञान विभाग एवं [4एवं 5]सब्जी विज्ञान विभाग
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

पत्राचारकर्ता: koushikkrishnaram@gmail.com

परिचय

मानव प्रतिष्ठानों के परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में वनस्पति की कमी, भौतिक और सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से, जीवन की गुणवत्ता को सीधे प्रभावित करती है। ऊर्ध्वाधर उद्यानों (वर्टीकल गार्डनिंग) के निर्माण की सिफारिश अंदरूनी और विशेष रूप से इमारतों के बाहरी हिस्से में की जाती है। इन प्रौद्योगिकियों को लागू करके, किसी भी प्रकार के क्षेत्र का उपयोग उसकी अधिकतम क्षमता पर किया जा सकता है, जिससे सौंदर्य संबंधी संयोजकता प्राप्त की जा सकती है, जो पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद है। भले ही ऊर्ध्वाधर उद्यानों के निर्माण और रखरखाव की कीमत शास्त्रीय परिदृश्य से अधिक है, इसकी भरपाई पर्यावरणीय लाभों, वनस्पति सतहों को बढ़ाने, प्रदूषण प्रभाव को कम करने के प्रभाव से की जाती है।

यदि आप शहरी क्षेत्रों में रहते हैं, जहाँ गार्डनिंग करने के लिए ज्यादा जगह उपलब्ध नहीं है, तब भी आप अपनी मन पसंद सब्जियां, फल-फूल, हर्ब्स आदि के पौधे बड़ी ही आसानी से उगा सकते हैं। इनडोर या आउटडोर दीवारों, खिड़कियों पर हैंगिंग पॉट्स और ग्रो बैग में या प्लांट स्टैंड में गमलों को रखकर उनमें पेड़-पौधे लगाना, वर्टिकल गार्डनिंग कहलाता है और इस प्रकार तैयार किए हुए गार्डन को वर्टिकल गार्डन कहते हैं, जिसे उर्ध्वाधर गार्डन या लम्बवत गार्डन भी कहा जाता है। वर्टिकल गार्डनिंग एक विशेष प्रकार की शहरी बागवानी है, जो छोटी जगहों के लिए उपयुक्त है, विशेष रूप से दीवारों और छतों को विभिन्न शैलियों में सजाने के लिए। यह ऊर्ध्वाधर स्थान में पौधों को उगाने के दायरे का विस्तार करके बागवानी की एक वैकल्पिक विधि है। गहन शहरीकरण ने बाहरी उद्यानों के लिए शायद ही कोई क्षैतिज स्थान छोड़ा है। हरी दीवारें न केवल शानदार रूप से सुंदर हैं, बल्कि माहौल को जीवंत बनाने में भी सहायक हैं। हरी दीवारें हवा में गर्म गैस को अवशोषित कर सकती हैं, घर के अंदर और बाहर दोनों के तापमान को कम कर सकती हैं, जिससे घर के अंदर स्वस्थ वायु गुणवत्ता के साथ-साथ अधिक सुंदर स्थान भी मिलता है और उपज बढ़ाती है साथ ही बाहरी कारकों पर निर्भरता कम करती है। सब्जियों, फलों, फूलों और जड़ी-बूटियों सहित विभिन्न बागवानी फसलों के उत्पादन में संरक्षित खेती का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

वर्टीकल गार्डनिंग के प्रकार

1. हरा अग्रभाग
2. लिविंग/हरी दीवार
   i) मॉड्यूलर हरी दीवारें
   ii) वानस्पतिक दीवार

हरा अग्रभाग

हरे अग्रभाग एक प्रकार की हरी दीवार प्रणाली है, जिसमें चढ़ाई वाले पौधों या कैस्केडिंग ग्राउंडकवर को विशेष रूप से डिज़ाइन की गई सहायक संरचनाओं को कवर करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इन संरचनाओं के आधार पर, जमीन में, मध्यवर्ती प्लांटरों में या यहां तक कि पूर्ण कवरेज प्राप्त करने पर भी जड़ें जमाई जाती हैं। हरे अग्रभाग को मौजूदा दीवारों से जोड़ा जा सकता है या बाड़ या स्तंभ जैसी स्वतंत्र संरचना के रूप में बनाया जा सकता है। पौधे या तो जमीन में उगाए जाते हैं या ऊँचे कंटेनरों में उगाए जाते हैं जहाँ उन्हें पानी दिया जाता है और खाद दी जाती है।

हरी दीवारें/लिविंग दीवारें

लिविंग दीवार प्रणाली पूर्व-वनस्पति पैनलों, लंबवत मॉड्यूल से बनी होती है, जो एक संरचनात्मक दीवार या फ्रेम पर लंबवत रूप से जुड़ी होती हैं। ये पैनल प्लास्टिक, विस्तारित पॉलीस्टाइनिन, सिंथेटिक कपड़े से बने हो सकते हैं और पौधों की प्रजातियों की एक विशाल विविधता का समर्थन करते हैं (उदाहरण के लिए: फर्न, ग्राउंड कवर, बारहमासी और खाद्य पौधों का एक शानदार मिश्रण)।

i) मॉड्यूलर हरी दीवार

वर्टिकल गार्डन मॉड्यूल पुनर्नवीनीकरण पॉली प्रोपलीन सामग्री से बना है। यह दिखने में आकर्षक है, प्रकृति में अत्यधिक टिकाऊ है और इसे आसानी से स्थापित किया जा सकता है। यह आपके निवास स्थान में बगीचा बनाने के लिए त्वरित समाधान प्रदान करता है।

हरी दीवार कप

- फ्रेम/सपोर्टिंग पैनल
- आसानी से अलग होने योग्य कप/बर्तन
- हरी दीवार कप प्रकार/ बायोवॉल कप

ii) **वानस्पतिक दीवार**

पैट्रिक ब्लैंक द्वारा शुरू की गई यह प्रणाली सिंथेटिक कपड़े की दो परतों से बनी है, जिसमें पौधों और बढ़ते मीडिया से भरी जेबें हैं। कपड़े की दीवारें एक ढांचे पर टिकी हुई हैं और इमारत की दीवार के खिलाफ एक जलरोधी झिल्ली द्वारा समर्थित हैं, पोषक तत्व और पानी इसके माध्यम से वितरित किए जाते हैं। दीवार के शीर्ष पर एक सिंचाई प्रणाली स्थापित होती है।

हरित दीवारों का निर्माण और स्थापना

हरित दीवार प्रणाली DIY परियोजनाओं से लेकर मॉड्यूलर हरित दीवार प्रणालियों तक उनके डिजाइन और निर्माण में बहुत भिन्न होती है। यह शीर्षक इसके बारे में जानकारी प्रदान करता है

i. हरित दीवार प्रणाली के लिए संरचनाएं और घटक
ii. उपयुक्त पौधे
iii. बढ़ता मीडिया
iv. सिंचाई एवं पौध पोषण
v. हरी दीवारों के लिए सामान्य विचार

हरित दीवार प्रणाली के लिए संरचनाएं और घटक

i. सामने का हिस्सा
ii. नीचे जल निकासी ट्रे
iii. जियो टेक्सटाइल थैली
iv. स्थिरिकारी
v. साइड पैनल
vi. लटकता हुआ हुक

पौधों का चयन

ऊर्ध्वाधर उद्यानों के लिए सर्वोत्तम पौधे घने, सघन और कम बढ़ने वाले होते हैं। सुनिश्चित करें कि आप ऐसी प्रजातियाँ चुनें जो, दीवार के उस पहलू के अनुकूल हों जिस पर वे बढ़ेंगे। उदाहरण के लिए, धूप में भीगी हुई दीवार के लिए काफी सूखा-सहिष्णु पौधों के चयन की आवश्यकता होगी, जबकि एक छायादार स्थान-शायद एक पेर्गोला या बरामदे के नीचे-के लिए फ़र्न जैसे छाया प्रेमियों के चयन की आवश्यकता होगी। यह भी ध्यान रखें कि इकाई के निचले भाग में शीर्ष की तुलना में अधिक नमी होगी, इसलिए जब आप यह तय कर रहे हों कि कहाँ क्या रोपना है तो इस पर विचार करें। सौंदर्य संबंधी प्राथमिकताओं और मिट्टी रहित, ऊर्ध्वाधर स्थान पर उगने की पौधों की क्षमता के अलावा; पौधों का चयन कई कारकों पर आधारित होता है, उदाहरण के लिएः स्थानीय जलवायु कैसी है (न्यूनतम तापमान जानना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है)। सतह के प्रत्येक क्षेत्र को कितना सूर्य एक्सपोज़र प्राप्त हो रहा है और वर्ष के दौरान यह कैसे बदलता है। क्या कोई विशेष सूक्ष्म जलवायु है-जैसे ऊँची इमारतें दीवार के साथ तेज़ हवाएँ बनाती हैं। पौधों का चयन करते समय सही निर्णय लेने के लिए मौजूदा बढ़ती परिस्थितियों को समझना आवश्यक है।

ऊर्ध्वाधर उद्यान के लिए उपयुक्त पौधे

बाहरी पौधे पेपेरोमिया, सिंगोनियम, फिलोडेंड्रोन, एपिप्रेमनम, बेगोनिया, एन्थ्यूरियम, नेफ्रोलेपिस, क्लोरोफाइटम, लैंटाना, पाइलिया, रियो डिस्कोलर, कपिया, फिटोनिया, स्पैथिफिलम, शेफलेरा आदि

इनडोर हरी दीवारें/छायांकित क्षेत्रों के लिए

शाकाहारी बारहमासी पेप्रोमिया, सिनगोनियम, फिलोडेंड्रोन, एपिप्रेमनम, पेप्रोमिया, बेगोनिया, एन्थ्यूरियम, क्लोरोफाइटम, पाइलिया, रियो डिस्कोलर, फिटोनिया, स्पैथिफिलम, शेफ़लेरा झाड़ियां शेफ़लेरा, फ़िकसपीपी, सरस रियो डिस्कोलर, ज़ेब्रिनापेंडुला, सेटक्रीसेपुरप्यूरिया, फर्न्स नेफ्रोलेपिस

बाहरी/बाहरी हरी दीवारों के लिए

शाकाहारी बारहमासी शतावरी एसपीपी., पिलेमाइक्रोफिला, अल्टरनेथेरा, मेंथा एसपीपी।
सरस जेड प्लांट, सेडम्स, पोर्टुलुका झाड़ियां डस्टी मिलर, कपिया ग्राउंड कवर, कैलिसरेपेन्स
घास जैसे पत्ते बनते हैं ओफ़ियोफ़ोगोन, डायनेलैटास्मानिका

पौधा उगने के लिए मीडिया

आवश्यकताएं

i. भारहीन मीडिया
ii. उच्च जल धारण क्षमता
iii. उच्च पोषक तत्व धारण क्षमता
iv. अच्छा संरंध्रता
v. उदासीन पीएच

कोकोपीट, पर्लाइट, स्पैगनम मॉस, वर्मीक्यूलाइट, वर्मीकम्पोस्ट, कटी हुई छाल और पत्तियाँ सामान्य मीडिया संयोजन हैं जिनका उपयोग किया जाता है। मिट्टी का उपयोग नहीं किया जाता क्योंकि इससे दीवारों का वजन बढ़ जाता है।

जीवित दीवारों में तीन प्रकार के विकास माध्यमों का उपयोग किया जाता हैः

1. ढीला मीडिया
2. मैट मीडिया
3. संरचनात्मक मीडिया.

1. ढीली मीडिया

दीवारें 'Soil-on-a-shelf' या 'Soil-in-a-bag' प्रकार की प्रणाली होती हैं। ढीले मीडिया प्रणालियों की मिट्टी को एक शेल्फ या बैग में पैक किया जाता है और फिर दीवार पर स्थापित किया जाता है। इन प्रणालियों के लिए आवश्यक है कि उनके मीडिया को साल में कम से कम एक बार बाहरी हिस्से में और लगभग हर दो साल में आंतरिक हिस्से में बदला जाए। ढीली मिट्टी प्रणालियाँ किसी भी भूकंपीय गतिविधि वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं हैं। क्षतिपूर्ति केवल दीवार के छिद्रों में दोबारा मिट्टी भरकर ही की जा सकती है, जो कठिन भी है और गन्दा भी। ढीली-मिट्टी प्रणालियों का उपयोग उन क्षेत्रों में नहीं किया जाना चाहिए जहाँ बहुत अधिक सार्वजनिक संपर्क होगा क्योंकि वे काफी गन्दे होते हैं और समय के साथ धीरे-धीरे अपनी मिट्टी खो देते हैं। भौतिक मीडिया क्षरण प्रणालियों के साथ ढीली-मिट्टी प्रणालियाँ सभी हरित दीवार अनुप्रयोगों के लिए उपयुक्त हैं।

2. मैट मीडिया

मैट प्रकार के सिस्टम या तो कॉयर फाइबर या फेल्ट मैट होते हैं। मैट मीडिया काफी पतले होते हैं, यहाँ तक कि कई परतों में भी, और इस तरह परिपक्व पौधों की जीवंत जड़ प्रणालियों को तीन से पाँच साल से अधिक समय तक समर्थन नहीं दे सकते हैं, इससे पहले कि जड़ें मैट से आगे निकल जाएं और पानी मैट के माध्यम से पर्याप्त रूप से नहीं निकल पाता है। इन प्रणालियों की मरम्मत की विधि एक समय में सिस्टम के बड़े हिस्से को दीवार से चटाई को काटकर और उसके स्थान पर नई चटाई से बदलना है। यह प्रक्रिया दीवार पर पड़ोसी पौधों की जड़ संरचनाओं से समझौता करती है और अक्सर मरम्मत प्रक्रिया में आसपास के कई पौधों को मार देती है।

3. संरचनात्मक मीडिया

संरचनात्मक मीडिया विकास माध्यम 'ब्लॉक' हैं जो ढीले नहीं हैं, न ही मैट हैं, लेकिन दोनों की सर्वोत्तम विशेषताओं को एक ब्लॉक में शामिल करते हैं, जिन्हें विभिन्न आकार और मोटाई में निर्मित किया जा सकता है। इन माध्यमों का लाभ यह है कि वे 10 से 15 वर्षों तक टूटते नहीं हैं, उन्हें दीवार के लिए पौधे के चयन के आधार पर उच्च या निम्न जल धारण क्षमता वाला बनाया जा सकता है, उनके पीएच और ईसी को पौधों के अनुरूप अनुकूलित किया जा सकता है, और रखरखाव और प्रतिस्थापन के लिए आसानी से संभाले जाते हैं। वे बाहरी अनुप्रयोगों और आंतरिक अनुप्रयोगों दोनों के लिए जीवित दीवार के लिए सबसे मजबूत विकल्प हैं। वे उन क्षेत्रों में भी सर्वोत्तम विकल्प हैं जहाँ डिज़ाइन में तेज़ हवाओं, भूकंपीय गतिविधि या ऊँचाइयों को संबोधित करने की आवश्यकता होती है। संरचनात्मक मीडिया अपनी लंबी उम्र और विभिन्न परिस्थितियों में उच्च-स्तरीय प्रदर्शन के कारण अन्य मीडिया से बेहतर है। स्थापना के आधार पर, उन्हें स्थापित करना अधिक महँगा होता है, लेकिन रखरखाव की लागत कम होती है।

सिंचाई और पौधों का पोषण

हरी दीवारें सिंचाई के बिना कायम नहीं रह सकतीं। पानी की आपूर्ति में रुकावट हरी दीवारों पर पौधों की विफलता का एक आम कारण है। अंतर्निर्मित सिंचाई के साथ डिज़ाइन की गई प्रणालियों को असंगत नमी प्रबंधन के कारण पौधों के नुकसान को कम करना चाहिए, हालांकि त्रुटियां अभी भी हो सकती हैं। स्वचालित, दूर से नियंत्रित सिंचाई प्रणालियों का उपयोग उच्च प्रोफ़ाइल स्थानों में दीवारों के लिए, या उन स्थितियों में किया जाता है, जहाँ पहुँच चुनौतीपूर्ण है। ध्यान दें कि विभिन्न प्रणालियों के बीच गुणवत्ता, डिज़ाइन और लागत अलग-अलग होंगी। सबसे परिष्कृत प्रणालियाँ रखरखाव पर्यवेक्षक को सिस्टम के स्वचालित प्रदर्शन पर नज़र रखने में सक्षम बनाती हैं, जिसमें वितरित सिंचाई की मात्रा, इसकी आवृत्ति, सब्सट्रेट नमी सामग्री, साथ ही पानी की आपूर्ति में पीएच और पोषक तत्व स्तर शामिल हैं। जरूरत पड़ने पर सेटिंग्स को ओवरराइड किया जा सकता है; उदाहरण के लिए, गर्म दिनों में सिंचाई चक्र की आवृत्ति या अवधि बढ़ाई जा सकती है। हाइड्रोपोनिक प्रणालियों में, पौधों को पोषण एक उर्वरक इंजेक्शन प्रणाली द्वारा दिया जाता है जो उर्वरक की नियंत्रित खुराक को सिंचाई प्रणाली (प्रजनन) में छोड़ता है। फर्टिगेशन सिस्टम और डिलीवरी की दरों के प्रबंधन के लिए विशेषज्ञ ज्ञान की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह मिट्टी को उर्वरित करने या बढ़ते मीडिया की तुलना में अधिक जटिल है। हाइड्रोपोनिक प्रणालियों को पीएच, पानी की कठोरता और कुल घुलनशील ठोस (टीडीएस) की निरंतर निगरानी और जहां आवश्यक हो इन मापदंडों के समायोजन की आवश्यकता होती है।

सिंचाई

सिंचाई प्रणाली को पानी की खपत को कम करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। इसमें पोषक तत्व इंजेक्शन और

सिंचाई चक्र के नियंत्रण के लिए उपकरणों के साथ एक स्वचालन-इकाई शामिल है। जब किसी सतह पर सूरज के संपर्क में भिन्नता होती है, तो सिंचाई को प्रत्येक भाग के लिए विशेष रूप से प्रोग्राम करने के लिए खंडों में विभाजित किया जाता है। बहुस्तरीय महसूस की गई सतह के भीतर एक ड्रिप-ट्यूब एकीकृत है। पानी की खपत गर्मी और धूप के साथ बदलती रहती है, लेकिन सामान्य हरे स्थानों या लॉन की तुलना में, खपत सामान्य रूप से कम होती है।

इसका औसत 2-5 एल/एम2/दिन के बीच है। हाइड्रोपोनिक ग्रीन वॉल सिस्टम के लिए, फर्टिगेशन सिस्टम प्रतिदिन प्रति वर्ग मीटर 0.5-20 लीटर सिंचाई समाधान लागू कर सकता है। आंतरिक हरी दीवार की आवश्यकताएँ इस श्रेणी के निचले सिरे पर हैं, और बाहरी हरी दीवारों की आवश्यकताएँ ऊपरी सिरे पर हैं। सिंचाई चक्र आम तौर पर कुछ मिनटों तक चलता है और दिन में कई बार इसकी आवश्यकता होगी। सिंचाई की मात्रा कम रखने से बर्बादी कम होती है और पानी का बहाव कम होता है। सिंचाई के पानी को दीवार के आधार पर एक टैंक में संग्रह किया जा सकता है और हरित दीवार प्रणाली के माध्यम से वापस पुनर्चक्रित किया जा सकता है। हरी दीवारें जो उच्च गुणवत्ता, जल-अवरोधक विकास माध्यम का उपयोग करती हैं, और खुले या विशेष रूप से गर्म स्थान पर नहीं हैं, साप्ताहिक पानी देने की व्यवस्था पर वृद्धि एवं विकास सकती हैं। अधिकांश सरल, मिट्टी-आधारित प्रणालियों में, जिनमें DIY सिस्टम भी शामिल हैं, नियंत्रित रिलीज उर्वरक को फर्टिगेशन प्रणाली का उपयोग करने के बजाय बढ़ते माध्यम के साथ मिलाया जाता है। दीवार प्रणाली में पौधे स्थापित होते ही सिंचाई उपलब्ध होनी चाहिए। सिंचाई प्रणाली में सिंचाई की मात्रा की निगरानी के लिए एक जल मीटर और पानी के समान अनुप्रयोग की निगरानी के लिए एक दबाव नापने का यंत्र की आवश्यकता होती है। निरंतर नियमित सिंचाई की आवश्यकता और यह अपेक्षा कि पानी का उपयोग निरंतर रूप से किया जाएगा, इसका मतलब है कि जब भी संभव हो संग्रहीत (काटा हुआ या पुनर्नवीनीकरण) पानी का उपयोग किया जाना चाहिए।

डिज़ाइन/प्रक्रिया

प्रत्येक ऊर्ध्वाधर उद्यान को एक अद्वितीय डिज़ाइन और प्रजातियों का चयन दिया जाता है। पौधों की संरचना उस विशिष्ट वातावरण को ध्यान में रखती है जहाँ इसे बनाया जाएगा, जैसे कि स्थानीय और सूक्ष्म जलवायु, सूर्यताप का जोखिम और आसपास का संदर्भ। इसका उद्देश्य एक अनोखा और साइट-विशिष्ट उद्यान बनाना है, जो वर्ष के सभी मौसमों में सुंदर बना रहे।

एक अच्छी तरह से निष्पादित डिज़ाइन बगीचे की भविष्य की रखरखाव की माँग को कम करने का एक तरीका भी है। पौधों के बीच प्रतिस्पर्धा को स्वस्थ स्तर पर बनाए रखने के लिए, प्रजातियों का सही संयोजन बनाने के लिए ऊर्ध्वाधर सतह पर पौधे की वृद्धि की आदत, आकार और व्यवहार महत्वपूर्ण ज्ञान है। सही जगह के लिए सही पौधे का चयन करना किसी भी बगीचे के लिए मायने रखता है।

लेकिन ऊर्ध्वाधर बगीचे में शायद यह और भी अधिक हो सकता है। एक ऊर्ध्वाधर उद्यान लगभग किसी भी स्थान पर स्थापित किया जा सकता है और एक जीवित सामग्री के रूप में, हमारे शहरी वातावरण में पौधों को एकीकृत करने की क्षमता है दिलचस्प है। ऐसी जगहें जिनके बारे में कभी सोचा भी नहीं गया था कि वहां पौधों का निवास हो सकता है, जैसे सबवे स्टेशन, मेट्रो स्टेशन या अन्य अत्यधिक बार-बार आने वाली जगहें जहां क्षैतिज जगह छोड़ना मुश्किल है।

प्रकाश

सीधी धूप 100,000 लक्स से अधिक प्रदान कर सकती है जबकि एक कार्यालय में औसत प्रकाश स्तर लगभग 300-500 लक्स है। भले ही कम से कम प्रकाश की माँग करने वाली प्रजातियों का उपयोग किया जाता है, कृत्रिम प्रकाश आमतौर पर घर के अंदर आवश्यक होता है। कुछ प्रजातियाँ 900 लक्स पर ठीक रहेंगी, लेकिन सतह के कुछ हिस्सों में थोड़ा बढ़ा हुआ स्तर उन प्रजातियों की विविधता को बढ़ा देगा जिनका उपयोग किया जा सकता है। कृत्रिम रूप से प्रकाशित सतह पर प्रकाश का स्तर बदलता रहता है, इस तथ्य के कारण कि प्रकाश स्रोत से दूरी के वर्ग के साथ प्रकाश कम हो जाता है। कुछ क्षेत्रों में 3,000 लक्स और अन्य में 900 लक्स हो सकते हैं। अधिक माँग वाली और दिलचस्प प्रजातियों के लिए उच्च स्तर का लाभ उठाते हुए, पौधे का डिज़ाइन इसी को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

सामान्य विचार

- पानी देनाः उचित समय
- पवन प्रवण क्षेत्रों के लिए सावधानीपूर्वक चयन (रसीले और कठोर पौधे)
- सूखे पत्तों को हटाना
- संरचना को साफ रखना
- जल निकासी प्रणाली से पानी का निपटान
- यदि आवश्यक हो तो काट-छाँट करें

• उर्वरकों का समय पर प्रयोग।

ऊर्ध्वाधर बागवानी के लाभ

• सौन्दर्यपरक प्रभाव।

• गर्म और ठंडी हवा के लिए प्राकृतिक इन्सुलेशन के रूप में कार्य करता है और आपके भवन के लिए ऊर्जा बचाता है।

• CO^2 के स्तर को कम करता है और ऑक्सीजन बढ़ाता है और वायु गुणवत्ता में सुधार करता है।

• पानी का संरक्षण होता है और पानी देने में कम मेहनत लगती है।

• ध्वनि अवशोषण और शोर अवशोषण।

• थर्मल इन्सुलेशन और ऊर्जा दक्षता में सुधार करता है।

• इमारतों को प्रतिकूल तापमान से सुरक्षा प्रदान करता है और इसलिए इमारतों की जीवन प्रत्याशा में सुधार होता है।

• शहरी द्वीप ताप प्रभाव को कम करें।

• इसमें वर्षा का पानी जमा होता है, जिससे वन्यजीवों को भोजन और आश्रय मिलता है।

निष्कर्ष

बढ़ती जनसँख्या और अत्याधिक शहरीकरण के चलते घट रही भूमि की उपलब्धता के कारण खेती की जमीन तथा शहरों में सौंदर्यीकरण के लिए भूमि में भी कमी आ रही है जिसके कारण शहरों में पार्क तथा उद्यानिकी को सफलतापूर्वक स्थापित करना कठिन हो गया है। ऊर्ध्वाधर उद्यानिकी ऐसे स्थानों पर एक टिकाऊ तकनीक है, जिसके द्वारा कम जगह पर अच्छा सौन्दर्यीकरण तथा उद्यान स्थापित किया जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

सब्जियों वर्गीय फसलों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

मनीष कुमार[1], सत्य प्रकाश[2], मो. वामिक[3] एवं कृष्णा कौशिक[4]

[1,2एवं 3]सब्जी विज्ञान विभाग, [4]पुष्प विज्ञान एवं भू–परिष्कृत बागवानी विभाग

सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

पत्राचारकर्ता: koushikkrishnaram@gmail.com

परिचय

कृषि की जटिल दुनिया में सब्जियों की फसलें हमारी खाद्य प्रणालियों का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। हालाँकि, जलवायु परिवर्तन का आसन्न खतरा उनके लचीलेपन के लिए एक अद्वितीय परीक्षा प्रस्तुत करता है। इस घटना से विश्व स्तर पर सब्जियों की खेती पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ रहा है, जिसका प्रभाव बदलते तापमान, अनियमित वर्षा और संशोधित मौसम पैटर्न के रूप में सामने आना शुरू हो गया है। सब्जियों की फसलें और जलवायु परिवर्तन एक जटिल नृत्य में शामिल हैं, जो साधारण मौसम पैटर्न से परे है। यह नई बीमारी की आशंकाएं पैदा करता है, कीटों का दबाव बढ़ाता है और बढ़ते मौसम के साथ खिलवाड़ करता है। खेतों में फैले इन प्रभावों के कारण वैश्विक खाद्य सुरक्षा, किसानों की आजीविका और फसल की पैदावार सभी खतरे में हैं। इस लेख का उद्देश्य सब्जी फसलों पर जलवायु परिवर्तन के जटिल प्रभावों का विश्लेषण और स्पष्टीकरण करना है। यह लचीली रणनीति, अत्याधुनिक नवाचारों और पर्यावरण के अनुकूल तरीकों की पहचान करने के लक्ष्य के साथ किसानों को बदलती परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने में आने वाली कठिनाइयों का पता लगाता है, जो इन पर्यावरणीय कठिनाइयों के सामने सब्जी की खेती को मजबूत कर सकते हैं। हमें उम्मीद है कि इस जाँच से हमें समस्याओं को बेहतर ढंग से समझने और संभावित समाधानों पर कुछ प्रकाश डालने में मदद मिलेगी। हम इन जटिल अंतःक्रियाओं को समझकर सब्जी कृषि के लिए ऐसे भविष्य का द्वार खोलते हैं, जो बदलती जलवायु के सामने अधिक मजबूत, अनुकूलनीय और टिकाऊ हो।

जलवायु पैटर्न को अपनाना और सब्जियाँ उगाना

• **तापमान में उतार-चढ़ावः** बढ़ता तापमान विभिन्न प्रकार की सब्जियों के लिए कई प्रकार की कठिनाइयाँ प्रस्तुत करता है। पौधों की शारीरिक प्रणालियाँ गर्मी के तनाव से प्रभावित होती हैं, जो वृद्धि और विकास पैटर्न को संशोधित करती हैं। गर्मी के प्रति संवेदनशील सब्जियाँ जैसे लेट्यूस, पालक और ब्रोकोली में बोल्टिंग बढ़ने या समय से पहले फूल आने की समस्या होती है, जिससे उत्पादन और गुणवत्ता कम हो जाती है। ऊंचे तापमान का असर फलों के सेट पर भी पड़ सकता है और परिणामस्वरूप मिर्च और टमाटर असमान रूप से पकेंगे। दूसरी ओर, कुछ सेम या भिंडी जैसी गर्मी-सहिष्णु किस्में थोड़ा बेहतर कर सकती हैं, लेकिन फिर भी उनकी पैदावार कम होती है और वे कीटों और बीमारियों के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। सभी बातों पर विचार करने पर, बढ़ता तापमान उस नाजुक संतुलन को बिगाड़ देता है,जो विभिन्न प्रकार की सब्जियों की फसलों के सर्वोत्तम रूप से फलने-फूलने के लिए आवश्यक है, जिससे उनकी प्रतिरोधक क्षमता, उत्पादन और गुणवत्ता प्रभावित होती है।

• **वर्षा परिवर्तनः** वर्षा के बदलते पैटर्न का सब्जियों की फसलों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक वर्षा या तीव्र तूफान से जल-जमाव हो जाता है, मिट्टी का क्षरण होता है और पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं, जिससे जड़ों की वृद्धि बाधित होती है और उपज से समझौता होता है। इसके विपरीत, लंबे समय तक शुष्क रहने से सूखे का तनाव पैदा होता है, अंकुरण में बाधा आती है और मुरझाने की समस्या होती है, जिससे उत्पादकता कम हो जाती है। इन उतार-चढ़ावों के लिए विवेकपूर्ण जल प्रबंधन प्रथाओं की आवश्यकता होती है। शुष्क अवधि के दौरान कुशल सिंचाई महत्वपूर्ण हो जाती है, जिससे मिट्टी में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए पानी का उपयोग अनुकूलित किया जाता है। इसके अलावा, मल्चिंग या ड्रिप सिंचाई जैसी जल-बचत तकनीकों को अपनाना नुकसान को कम करने और इष्टतम विकास को बनाए रखने, अनियमित वर्षा पैटर्न के खिलाफ लचीलापन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक साबित होता है।

बढ़ते मौसमों और भौगोलिक क्षेत्रों में बदलाव

• **परिवर्तित कृषि मौसमः** जलवायु परिस्थितियों में बदलाव से सब्जियों के लिए पारंपरिक रोपण और फसल की समयसीमा में काफी बदलाव आता है। तापमान और मौसम के पैटर्न में बदलाव से अभ्यस्त बढ़ते मौसम बाधित होते हैं। गर्म तापमान रोपण कार्यक्रम को आगे बढ़ा सकता है, जिससे परिपक्वता के

दौरान गर्मी के तनाव से बचने के लिए पहले रोपण करने को प्रेरित किया जा सकता है। इसके विपरीत, अनियमित या विलंबित वर्षा से रोपण में देरी हो सकती है। फसल की कटाई की अवधि में भी उतार-चढ़ाव होता है, फसलें अपेक्षा से पहले या बाद में पकती हैं, जिससे बाजार की उपलब्धता और मूल्य निर्धारण पर असर पड़ता है। किसानों को रोपण कैलेंडर को समायोजित करके, लचीली फसल किस्मों की खोज करके, और बदलते जलवायु पैटर्न के साथ रोपण और कटाई को सिंक्रनाइज़ करने के लिए नवीन तकनीकों को नियोजित करके, बदलते मौसम के बावजूद फसल की सफलता सुनिश्चित करनी चाहिए।

• **भौगोलिक सीमा परिवर्तनः** जलवायु परिवर्तन सब्जियों की खेती में अनुकूलन को प्रेरित कर सकता है, जिससे कुछ फसलों की भौगोलिक सीमा में परिवर्तन हो सकता है। गर्म तापमान मिर्च या बैंगन जैसी गर्मी पसंद सब्जियों के लिए उपयुक्त क्षेत्रों का विस्तार कर सकता है, जिससे पहले से अनुपयुक्त क्षेत्रों में विकास संभव हो सकेगा। इसके विपरीत, ठंडे क्षेत्रों को चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है क्योंकि ठंडे मौसम के सलाद जैसी पारंपरिक फसलें गर्मी के तनाव से जूझती हैं। इस तरह के बदलावों से किसानों को नई किस्मों की खोज करने या फसल की सफलता सुनिश्चित करने के लिए विकसित जलवायु से मेल खाने के लिए खेती के तरीकों में बदलाव करने की आवश्यकता हो सकती है।

फसल रोगों और कीटों पर प्रभाव

• **कीट गतिशीलताः** परिवर्तित जलवायु कीटों के व्यवहार को प्रभावित करती है, नई गतिशीलता को बढ़ावा देती है और सब्जियों की फसलों के लिए खतरे को बढ़ाती है। गर्म तापमान कीटों के जीवन चक्र को तेज़ करता है, प्रजनन दर बढ़ाता है और उनकी भौगोलिक सीमा का विस्तार करता है। जो कीट पहले विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सीमित थे, वे अब पहले से अनुपयुक्त क्षेत्रों में भी पनपने लगे हैं। इसके अतिरिक्त, अप्रत्याशित मौसम पैटर्न प्राकृतिक कीट नियंत्रण तंत्र को बाधित करता है, जिससे संक्रमण बढ़ जाता है। इसके अलावा, जलवायु-प्रेरित तनाव पौधों की प्रतिरक्षा को कमजोर कर देता है, जिससे वे कीटों के हमलों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। इन बदलावों के लिए सतर्क निगरानी, अनुकूली कीट प्रबंधन रणनीतियों और कीटनाशकों के उपयोग में संभावित परिवर्तनों की आवश्यकता होती है ताकि कीट की गतिशीलता में बदलाव से उत्पन्न बढ़ते जोखिम को कम किया जा सके।

• **रोग का फैलावः** बदलती जलवायु परिस्थितियों के कारण सब्जियों की फसलों में बीमारियों का खतरा बढ़ गया है। ऊंचा तापमान और परिवर्तित वर्षा पैटर्न रोग पैदा करने वाले रोगजनकों के लिए अनुकूल वातावरण बनाते हैं, उनके प्रसार और दृढ़ता को बढ़ावा देते हैं। इसके अलावा, अनियमित मौसम पौधों की सुरक्षा को कमजोर कर देता है, जिससे फसलें संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती हैं। जलवायु में बदलाव बीमारियों के भौगोलिक वितरण को भी बदल सकता है, जिससे पहले से अप्रभावित क्षेत्रों में नए रोगजनकों का आगमन हो सकता है। रोग का यह बढ़ा हुआ दबाव पारंपरिक कृषि पद्धतियों को चुनौती देता है, जिससे बढ़ते जोखिम को कम करने और बदलती जलवायु में सब्जी फसलों के स्वास्थ्य और उत्पादकता को बनाए रखने के लिए फसल चक्र, प्रतिरोधी किस्मों और बढ़ी हुई रोग निगरानी जैसे सक्रिय उपायों की आवश्यकता होती है।

किसानों के सामने चुनौतियाँ

• **आर्थिक चुनौतियाँः** जलवायु-संबंधित फसल विफलता या उपज में उतार-चढ़ाव किसानों पर गहरी आर्थिक कठिनाइयां पैदा करता है। अनियमित मौसम पैटर्न के कारण उपज में कमी या पूरी फसल का नुकसान सीधे तौर पर आय को कम करता है, जिससे आजीविका और वित्तीय स्थिरता खतरे में पड़ जाती है। सिंचाई प्रणाली या लचीली बीज किस्मों जैसे अनुकूली उपायों में निवेश करने से किसानों को उत्पादन लागत में वृद्धि का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा, आपूर्ति में उतार-चढ़ाव के कारण बाजार की अस्थिरता मूल्य निर्धारण और लाभप्रदता को प्रभावित करती है। फसल बीमा या सरकारी सहायता तत्काल नुकसान को कम कर सकती है, लेकिन निरंतर जलवायु संबंधी चुनौतियाँ वित्तीय तनाव को बनाए रखती हैं, जिससे जलवायु-प्रेरित अनिश्चितताओं द्वारा लगाए गए आर्थिक झटकों का सामना करने के लिए दीर्घकालिक टिकाऊ कृषि प्रथाओं की आवश्यकता होती है।

• **संसाधन प्रबंधनः** जलवायु में उतार-चढ़ाव किसानों के लिए संसाधन प्रबंधन में बहुआयामी चुनौतियाँ पैदा करता है। अनियमित वर्षा पैटर्न के लिए विवेकपूर्ण जल प्रबंधन की आवश्यकता होती है, सूखे की भरपाई या जलभराव को रोकने के लिए कुशल सिंचाई प्रणालियों की आवश्यकता होती है। अत्यधिक मौसम के कारण मिट्टी का स्वास्थ्य खराब हो जाता है, जिससे कटाव और पोषक तत्वों की हानि को रोकने के लिए कवर क्रॉपिंग या मल्चिंग जैसी संरक्षण प्रथाओं की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, अप्रत्याशित स्थितियाँ अनुकूलनीय रणनीतियों की मांग करती हैं, जो किसानों को

बदलती जलवायु के बीच पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखते हुए संसाधनों के उपयोग को अनुकूलित करने के लिए मजबूर करती हैं।

बदलती जलवायु में सब्जी की खेती का भविष्य

• **भविष्यवाणियाँ और अनुमानः** निरंतर जलवायु परिवर्तन से सब्जी की खेती के लिए कई तरह की चुनौतियों का अनुमान लगाया जा रहा है। बढ़ते तापमान के कारण पारंपरिक फसल विकल्पों में बदलाव करते हुए गर्मी-सहिष्णु किस्मों को अपनाने की आवश्यकता हो सकती है। वर्षा के पैटर्न में बदलाव के लिए उन्नत सिंचाई प्रणाली या जल-संरक्षण प्रौद्योगिकियों की आवश्यकता हो सकती है। कीट और बीमारियाँ फैल सकती हैं, जिसके लिए मजबूत निगरानी और अनुकूली कीट प्रबंधन रणनीतियों की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, खेती के क्षेत्रों में भौगोलिक बदलाव उभर सकते हैं क्योंकि किसान अधिक उपयुक्त जलवायु की तलाश कर रहे हैं, जिससे जलवायु परिवर्तन के चल रहे प्रभावों के खिलाफ लचीलापन सुनिश्चित करने के लिए कृषि पद्धतियों में समायोजन की आवश्यकता होगी।

• **आशाजनक समाधानः**

लचीली फसल की किस्में: प्रजनन कार्यक्रमों के माध्यम से गर्मी-सहिष्णु, सूखा-प्रतिरोधी और रोग-सहिष्णु सब्जी किस्मों का विकास और उपयोग जलवायु तनावों के खिलाफ लचीलापन प्रदान करता है।

सटीक कृषिः सेंसर, ड्रोन और डेटा एनालिटिक्स जैसी स्मार्ट तकनीकों को अपनाने से अपशिष्ट को कम करते हुए सटीक संसाधन प्रबंधन, पानी और उर्वरक के उपयोग को अनुकूलित करना संभव हो जाता है।

कृषि पारिस्थितिकीय प्रथाएँ: कृषि वानिकी, कवर क्रॉपिंग और फसल चक्र को लागू करने से मिट्टी के स्वास्थ्य, जैव विविधता और लचीलेपन को बढ़ावा मिलता है, जलवायु प्रभावों को कम किया जाता है और पारिस्थितिकी तंत्र स्थिरता को बढ़ाया जाता है।

जल संरक्षण के तरीकेः ड्रिप सिंचाई, वर्षा जल संचयन और मिट्टी की नमी की निगरानी का कार्यान्वयन कुशल जल प्रबंधन में सहायता करता है, जो अनियमित वर्षा पैटर्न के सामने महत्वपूर्ण है।

नीति समर्थन और शिक्षाः किसानों की शिक्षा और जलवायु-लचीली तकनीकों पर प्रशिक्षण के साथ टिकाऊ कृषि प्रथाओं का समर्थन करने वाली सरकारी पहल अनुकूलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सहयोगात्मक अनुसंधानः जलवायु-स्मार्ट प्रथाओं, नवीन प्रौद्योगिकियों और लचीली फसल किस्मों पर ध्यान केंद्रित करने वाला निरंतर अनुसंधान टिकाऊ और अनुकूली सब्जी खेती प्रथाओं की दिशा में प्रगति करता है, जो बदलती जलवायु के बीच एक लचीले और टिकाऊ भविष्य की आशा प्रदान करता है।

निष्कर्ष

एक स्थायी कृषि भविष्य के निर्माण के लिए जलवायु परिवर्तन और सब्जी फसलों के बीच जटिल संबंध को समझना महत्वपूर्ण है। बदलते बढ़ते मौसमों, बदलती भौगोलिक सीमाओं, कीट और रोग की गतिशीलता और संसाधन चुनौतियों की गतिशील परस्पर क्रिया अनुकूली उपायों की मांग करती है। लचीली फसल किस्मों, नवीन तकनीकों और पर्यावरण के प्रति जागरूक प्रथाओं को अपनाने से आशा मिलती है। वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि, नीति समर्थन और किसान लचीलेपन के तालमेल से, हम जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों से निपट सकते हैं, जिससे सब्जी कृषि की लचीलापन और जीवन शक्ति सुनिश्चित हो सकती है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

समाज के विकास में सामुदायिक रेडियो की भूमिका

अलीमुल इस्लाम[1]* एवं नौशाद आलम[2]

[1]कृषि प्रसार विभाग, दा.द.उ.गो.वि., गोरखपुर

[2]कृषि प्रसार विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र, फ़िरोज़ाबाद

पत्राचारकर्ता: alikhan9695@gmail.com

परिचय

सामुदायिक रेडियो रेडियो प्रसारण में एक महत्वपूर्ण तीसरा स्तर है, जो सार्वजनिक सेवा रेडियो प्रसारण और वाणिज्यिक रेडियो से अलग है। सामुदायिक रेडियो स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, कृषि आदि से संबंधित मुद्दों पर स्थानीय आवाजों को प्रसारित करने के लिए समुदायों को एक मंच प्रदान करता है। चूंकि सामुदायिक रेडियो प्रसारण स्थानीय भाषाओं और बोलियों में होता है, इसलिए लोग इससे तुरंत जुड़ पाते हैं। सामुदायिक रेडियो स्टेशन स्थानीय समुदायों द्वारा स्थापित और संचालित किया जाता है।सामुदायिक रेडियो, विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को मजबूत करने की क्षमता रखता है। सामुदायिक रेडियो जहां, प्रत्येक राज्य अपनी अलग भाषा और सांस्कृति विरासत का कोष लिये है वहीं स्थानीय कलाकारों को समुदाय के समक्ष उनकी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए मंच मुहैया कराता है।

भारत में जहां एक तरफ एंटरटेंनमेंट मीडिया हर साल तरक्की की नई ऊँचाई छू रहा है, वहीं दूसरी तरफ,एक बड़ी आबादी कम्यूनिटी रेडियो यानी सामुदायिक रेडियो के नाम से बहुत कम परिचित है। सामुदायिक रेडियो का दायरा बेहद छोटा होना और इसके प्रसारण और फायदा पाने वालो का बेहद आम और स्थानीय होना इसके प्रमुख कारण है।

सामुदायिक रेडियो स्टेशन ऐसे समुदायों द्वारा परिचालित और संचालित होते हैं और उनका स्वामित्व भी उनका ही होता है, जिनके लिए वे सेवा प्रदान करते हैं। सामुदायिक रेडियो लाभ कमाने के लिए नहीं होते और यह व्यक्ति विशेष, समूह और समुदायों की अपनी विविध कहानियों को कहने, अनुभवों को बांटने की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं और संचार माध्यम से सम्पन्न दुनिया में सक्रिय संचार माध्यम के सहयोगी बनते हैं। दुनिया के कई हिस्सों में, स्वयंसेवी क्षेत्र, नागरिक समाज, एजेंसियों, गैर-सरकारी संगठनों और नागरिकों के लिए सामुदायिक रेडियो और सामुदायिक विकास तथा प्रसारण उद्देश्यों के कार्य में भागीदारी के माध्यम के रूप में काम करता है।

सामुदायिक रेडियो ऐतिहासिक रूप से विभिन्न देशों में विभिन्न ढंग से विकसित हुआ और इसलिए यूनाइटेड किंगडम, आयरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया में इस शब्दावली का कुछ अलग-अलग अर्थ होता है फ्रान्स, अर्जेंटीना, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और आयरलैंड जैसे कई देशों में एक विशिष्ट प्रसारण क्षेत्र के रूप में सामुदायिक रेडियो की महत्वपूर्ण कानूनी परिभाषा की गयी है। परिभाषा के रूप में सामाजिक लाभ, सामाजिक उद्देश्य, सामाजिक प्राप्ति जैसे वाक्यांश शामिल किये।

कोरोना जैसी भयावह बीमारी के संक्रमण को रोकने के लिए जब केन्द्र सरकार द्वारा 24 मार्च 2020 को लॉकडाउन की घोषणा से ग्रामीण समुदायों में खलबली मच गई थी क्योंकि ग्रामीण समुदाय इस प्रकार के अप्रत्याशित कदम के लिए तैयार नहीं थे। कोरोना महामारी के संक्रमण से बचाने, अफवाहों से सचेत रहने व आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित कराने के लिए देशभर के सामुदायिक रेडियो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई स ऐसे में सामुदायिक रेडियो ग्रामीण समुदायों की मदद के लिए आगे आए और उनकी समस्याओं, जरूरतों को शासन-प्रशासन तक पहुंचाया ताकि जरूरतमंदों को राशन एवं अन्य रोजमर्रा की जरूरत की चीजें पहुंचाई जा सकें। लॉकडाउन के दौरान उन्हें संक्रमण एवं अफवाहों से बचने के लिए सचेत करने, उनका मनोबल बढ़ाने के लिए कई प्रकार के शिक्षाप्रद कार्यक्रमों के साथ ही लोकसंगीत एवं लोकगाथाओं का प्रसारण भी किया। सामुदायिक रेडियो समुदायों को सशक्त बनाने का सबसे सशक्त माध्यम है। यही कारण है कि सरकार सामुदायिक रेडियो की संख्या बढ़ाने पर बल दे रही है। हाल ही के एक सर्वेक्षण में यह बात का खुलासा हुआ है कि टेलीविजन के बाद रेडियो सूचना और मनोरंजन का सबसे सशक्त माध्यम है।

सातवें सामुदायिक रेडियो सम्मेलन के अवसर पर सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने सामुदायिक रेडियो स्टेशनों के कार्यों एवं उनके उत्साह की प्रशंसा की थी और कहा था कि सामुदायिक रेडियो

समाज को सशक्त बनाने का काम कर रहा है। आपदाओं के वक्त सूचनाओं को तेजी से पहुंचाने में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। इसी अवसर पर मौजूद सूचना एवं प्रसारण सचिव ने भी सामुदायिक रेडियो की प्रासंगिकता को रेखांकित किया था और कहा था कि देश के प्रत्येक जिले में एक सामुदायिक रेडियो स्टेशन होना चाहिए। दरअसल, केन्द्र सरकार सामुदायिक रेडियो की संख्या बढ़ाकर 500 तक करना चाहती है और इसी कड़ी में गत वर्ष सामुदायिक रेडियो के लिए 118 नए लाइसेंस जारी किए गए हैं लेकिन इस सब के बावजूद अभी तक केवल 289 सामुदायिक रेडियो स्टेशन ही अस्तित्व में आ पाए हैं। सामुदायिक रेडियो की अवधारणा आकाशवाणी की रेडियो सेवा को ध्यान में रखकर की गई थी। आकाशवाणी सरकारी तंत्र की सहायता से सूचनाओं का अदान-प्रदान करने के साथ-साथ गीत-संगीत, साक्षात्कार तथा परिचर्चाओं के जरिए जनता से रूबरू होता था और यही एकमात्र सूचना, संगीत और मनोरंजन का साधन था। आकाशवाणी और दूरदर्शन के जरिए दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार की आवाज तो पहुंच जाती थी लेकिन समुदाय की आवाज को अपनी बात रखने का प्लेटफार्म नहीं मिल पाता था। समुदाय को विकास योजनाओं से जोड़ने तथा योजनाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने तथा उनकी प्रमुख आवश्यकताओं को बारे में शासन-प्रशासन अनभिज्ञ रहता था। समय के साथ-साथ ग्रामीण समुदायों के जोड़ने की पहल हुई और पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए अधिक अधिकार दिए गए ताकि पंचायतों के जरिए सरकारी योजनाओं का लाभ हर अंतिम व्यक्ति तक पहुंचे और ऐसा हुआ भी, लेकिन जानकारी एवं साक्षरता के अभाव में समाज के कई तबके पीछे छूट गए। समाज के हर अंतिम व्यक्ति तक सरकारी योजनाओं का लाभ पहुंचाने और जागरूक तथा शिक्षित बनाने के उद्देश्यों ने सामुदायिक रेडियो की परिकल्पना को साकार किया है। सामुदायिक रेडियो विशुद्ध रूप से समाज सेवा के मकसद से चलाए जा रहे हैं। यह शैक्षणिक संस्थानों तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों के उत्थान के उद्देश्यों से चलाए रहे हैं और इनका सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ है कि यह समुदायों की सशक्त आवाज बनकर क्षेत्रीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

सामुदायिक रेडियो समुदायों को आपस में जोड़ने तथा सामुदायिक भावना से सामूहिक निर्णय लेने समुदायों को प्रेरित कर रहे हैं। गांव के विकास में सामुदायिक रेडियो की भूमिका बढ़ी है। सामुदायिक रेडियो को हम इन शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं कि ष्यह जनता के लिए जनता द्वारा, जनता का है। सामुदायिक रेडियो का स्वरूप लोकतांत्रिक है जिसमें हर व्यक्ति को बोलने, सुनने और कार्यक्रम बनाने की पूरी छूट है। रेडियो संचार का एक ऐसा माध्यम है जिससे ग्रामीणों के विकास और सशक्तिकरण की राह खुलती है और निरक्षर भी अपनी भागीदारी निभा सकते हैं।

इसके ग्रामीण न केवल श्रोता हैं, बल्कि कार्यक्रम निर्माण में भी उनकी प्रमुख भूमिका होती है। रेडियो के माध्यम से ग्रामीणों को विभिन्न सरकारी योजनाओं, पंचायती राज और ग्रामीण विकास जैसे मुद्दों पर स्थानीय भाषा में जानकारी मिल रही है। रेडियो एक ऐसा माध्यम है, जो सस्ता है और इसकी पहुंच सब लोगों तक है। जहां भी सामुदायिक रेडियो स्थापित हुए हैं वहां ज्यादातर ग्रामीणों के पास रेडियो सेट हैं और अब तो सभी मोबाइल में एफ. एम. रेडियो मौजूद है जिससे अब यह हर ग्रामीण की पहुंच में है और वे बड़े गर्व से अपने सामुदायिक रेडियो को सुनते हैं। उन्हें लगता है कि यह उनका अपना रेडियो है, जहां वे अपनी बात अपनी भाषा में आसानी से रख सकते हैं क्योंकि इनके ज्यादातर प्रस्तोता उनके ही आसपास के गांवों से हैं जो उन्हें उनकी बात उनकी भाषा में न सिर्फ सुनाते हैं बल्कि समझाते भी हैं। अक्सर देखा जाता है कि पारंपरिक मीडिया मसलन टी.वी. और अखबारों में ग्रामीण खबरों, समस्याओं और मुद्दों का अभाव रहता है। ऐसे में सामुदायिक रेडियो ग्रामीण भारत को शहरी भारत से जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। लोकल सर्कल नामक संस्था द्वारा के हालिया सर्वे में 203 जिलों के 23 हजार लोगों ने हिस्सा लिया, जिनमें से 43% लोगों ने कहा कि ऑनलाइन क्लासेस के लिए उनके पास कम्प्यूटर, टेबलेट, प्रिंटर, राउटर जैसी चीजें नहीं है। इस मामले में ग्रामीण क्षेत्रों की हालत और ज्यादा खराब है। ग्रामीण इलाकों में प्रति सौ लोगों पर केवल 21.76 व्यक्ति के पास इंटरनेट है और स्मार्टफ़ोन और हाईस्पीड इंटरनेट तो मात्र 8-10 प्रतिशत के पास है तो बच्चे पढ़ेंगे कैसे?

ऐसे में ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों की मदद के लिए देशभर में स्थित विभिन्न सामुदायिक रेडियो आगे आये हैं और अपना एक घंटे-दो घंटे का स्लॉट बच्चों की पढ़ाई के लिए शुरू किया है और कई जगह पढ़ाई शुरू हो चुकी है। हरियाणा के नूंह जिले में हाशिए पर खड़े समुदायों को विकास की मुख्यधारा में शामिल करने और सामुदायिक गतिविधियों में हर स्तर पर उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए घाघस ब्लॉक में सहगल

फाउंडेशन द्वारा अल्फाज-ए-मेवातष् सामुदायिक रेडियो वर्ष 2012 में स्थापित किया गया है जो पिछले 8 वर्षों से अनवरत जारी है।

रेडियो अपने शुरूआती दौर से ही बच्चों को 'रेडियो स्कूल' और 'स्कूल चलें हम जैसे कार्यक्रमों के जरिए अंग्रेजी की बुनियादी शिक्षा देने के साथ ही हर बच्चे को अनिवार्य शिक्षा देने पर बल देता आ रहा है। रेडियो जिले के 225 गांवों के ग्रामीणों को विभिन्न सूचनापरक और मनोरंजन कार्यक्रमों के साथ-साथ शिक्षा, चिकित्सा, स्वच्छता, जल संरक्षण एवं एवं संचयन, कृषि, पर्यावरण तथा आजीविका से जुड़े मुद्दों पर जानकारी देता है। रेडियो समुदाय के हर वर्ग मसलन बच्चों, महिलाओं, किसानों, किशोरों तथा वृद्ध लोगों से विभिन्न कार्यक्रमों के जरिए जुड़ा है। रेडियो के माध्यम से विभिन्न सरकारी योजनाओं, पंचायती राज और ग्रामीण विकास जैसे मुद्दों पर स्थानीय भाषा में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं

एक ऐसा रेडियो केन्द्र जो कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, सामुदायिक विकास, संस्कृति सम्बन्धी कार्यक्रमों के प्रसारण के साथ-साथ समुदाय के लिए तात्कालिक प्रासंगिता के कार्यक्रमों का प्रसारण करता हैद्य सामुदायिक रेडिओ की संज्ञा दी जा सकती हैंद्य सामुदायिक रेडियो को किसी एक परिभाषा में बाँधना सम्भव नहीं है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

हाइड्रोपोनिक्स खेतीः एक संक्षिप्त परिचय

अलीमुल इस्लाम[1]* एवं नौशाद आलम[2]

[1]कृषि प्रसार विभाग, दा.द. उ.गो.वि., गोरखपुर
[2]कृषि प्रसार विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र, फ़िरोज़ाबाद

पत्राचारकर्ताः alikhan9695@gmail.com

परिचय

हाइड्रोपोनिक्स मिट्टी के बजाय पानी आधारित पोषक तत्वों का प्रयोग करके पौधे उगाने की तकनीक है। हाइड्रोपोनिक खेती घर के अंदर पौधे उगाने का एक प्रभावी तरीका है और इसके विभिन्न तरीकों से अपने फायदे हैं। हाइड्रोपोनिक उत्पाद को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में ऊंची कीमत मिलती है। हाइड्रोपोनिक उत्पादन प्रणालियों का उपयोग छोटे किसानों, शौकीनों और वाणिज्यिक उद्यमों द्वारा किया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में फसल की उपज और पैदावार को बढ़ाने के लिए हर दिन नए-नए तरह के अविष्कार हो रहें है। साथ ही कई नई-नई तकनीकों का उपयोग भी बहुत तेजी से हो रहा है। ऐसी ही एक तकनीक हाइड्रोपोनिक खेती भी शामिल है। हाइड्रोपोनिक खेती पानी, बालू या कंकड़ों में की जा सकती है। नियंत्रित जलवायु में बिना मिट्टी के पौधे उगाने की तकनीक को हाइड्रोपोनिक कहते हैं। इस तकनीक के जरिए फसल पानी और उसके पोषण स्तर के जरिए बढ़ती है। जानकारी के अनुसार हाइड्रोपोनिक खेती में पारंपरिक खेती की अपेक्षा मात्र 10 फीसदी पानी की जरूरत पड़ती है. हाइड्रोपोनिक खेती अधिकतर पश्चिमी देशों में की जा रही है, लेकिन भारत में भी हाइड्रोपोनिक खेती की धूम ळें राजस्थान जैसे शुष्क क्षेत्रों के किसान इस ओर ज्यादा आकर्षित हैं। यहीं नहीं गोवा में भारत सरकार की मदद से हाइड्रोपोनिक तकनीक के जरिए हरा चारा उत्पादन इकाई की स्थापना की गई है। हाइड्रोपोनिक खेती से हो रहे लाभ को देखते हुए कृषकों का रुझान हाइड्रोपोनिक खेती की ओर देखने को मिल रहा है, किसान पारम्परिक खेती को छोड़ इसकी ओर आकर्षित हो रहें हैं।

हाइड्रोपोनिक खेती किसे कहते हैं

इस तकनीक में सिर्फ पानी के जरिये ही फसलों को उगायी जाती है। यह खेती करने का एक आधुनिक तरीका है, जिसमे बिना मिट्टी का प्रयोग किये आधुनिक तरीके से खेती की जाती है। इसमें पाइप में पोषणयुक्त पानी बहती है, जिसके उपर पौधे लगाये जाते हैं। पौधों की जड़े उससे अपना न्यूट्रिशन लेती है। बाजार में हाइड्रोपॉनिक्स तकनीक के कई मॉडल उपलब्ध हैं। इस तकनीक से पानी बेहद कम खर्च होता है। इसमें पारालाइट और कोकपिट की जरूरत होती है। इस खेती को लगभग 15 से 30 डिग्री तापमान और 80 से 85 प्रतिशत आद्र्रता (भ्नउपकपजल) में किया जा सकता है।

पौधों को पोषक तत्व कैसे प्राप्त होते हैं

पौधों को बढ़ने के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जो कि उसे मिट्टी में उपस्थित तत्वों से प्राप्त होते हैं। अगर मिट्टी का प्रयोग न किया जाये तो पौधों को पोषक तत्व कैसे प्राप्त होंगे। इसके लिए फास्फोरस, नाइट्रोजन, मैग्निशियम, कैलशियम, पोटाश, जिंक, सल्फर, आयरन जैसे पोषक तत्वों तथा खनिज प्रदार्थो को एक उचित मात्रा में मिलाकर मिश्रित कर लिया जाता है। मिश्रण किये गए इस घोल को निर्धारित समय में देते रहना चाहिए, जिससे पौधों को सभी पोषक तत्व समय समय पर प्राप्त होते रहें। पारंपरिक खेती हो या हाइड्रोपोनिक खेती, पौधों का ख्याल रखना बेहद जरूरी होता है। हाइड्रोपोनिक खेती में पौधों को थोड़ी दूरी पर लगाएं ताकि पौधों में वृद्धि हो सके। जल प्रवाह की जांच करते रहें, साथ ही पौधों में कोई समस्या आने पर जल्द उपचार करें या विशेषज्ञ से सलाह लें।

हाइड्रोपोनिक खेती करने का तरीका

हाइड्रोपोनिक खेती करने के लिए ज्यादा जगह की जरूरत नहीं होती है। इस विधि से 2 या फिर 10 प्लांटर के सिस्टम से खेती शुरू कर सकते हैं, इस तकनीक में पाइप का इस्तेमाल किया जाता है। जिसमे कई छेद होते है, इन्हीं छेदों में पौधे लगाए जाते है। पौधे की जडें ़पाइप के अंदर होनी चाहिए जहां पोषक तत्व युक्त पानी भरा होता हैजिसमे जड़ें डूबी

रहती हैं। वर्तमान समय में इस तकनीक का इस्तेमाल केवल छोटे पौधों वाले फसलों की खेती में किया जा रहा है, जैसे- शिमला मिर्च, मटर, मिर्च, स्ट्रॉबेरी, ब्लैकबेरी, ब्लूबेरी, तरबूज, खरबूजा, अनानास, अजवाइन, तुलसी,गाजर, शलजम, ककड़ी, मूली, आलू आदि उगा सकते हैं।

कीट और रोग

पौधों में कई तरह की बीमारियों हो जाती हैं। कभी पत्ते पीले होते हैं, तो कभी पौधों में कीट लग जाते हैं। इससे बचाव के लिए कीटनाशक का प्रयोग करें या किसी कृषि विशेषज्ञ से जाकर सलाह ले सकते हैं।

हाइड्रोपोनिक खेती में लगने वाली लागत

इस तरह की तकनीक का इस्तेमाल करने में पहले अधिक लागत लगती है, किन्तु एक बार यह प्रणाली प्रभावी रूप से चलन में होती जाती हैं, वैसे लागत में कमी आती जाती है। फिर आप इसमें खेती कर अधिक लाभ कमा सकते है। इसमें कम जगह में अधिक पौधे उगाये जा सकते है। इसमें होने वाले खर्च की बात करें तो हाइड्रोपोनिक तकनीक स्थापित करने में प्रति एकड़ के क्षेत्र में तक़रीबन 50 लाख रूपए का खर्च होगा। यदि आप छोटी जगह में इस तकनीक को स्थापित करना चाहते है तो 100 वर्ग फुट के क्षेत्र में लगभग 50,000 से 60,000 रूपए तक का खर्च आ सकता है। इतने क्षेत्र में तक़रीबन 200 पौधों को उगा सकते है। यदि आप चाहे तो अपने घर की छत पर भी इस तकनीक का इस्तेमाल कर खेती कर सकते है।

हाइड्रोपोनिक खेती के लाभ

- इस तकनीक का इस्तेमाल कर आप अधिक पानी की खपत से बच सकते हैं।
- हाइड्रोपोनिक खेती में लगभग 90 प्रतिशत पानी की बचत होती है।
- परंपरागत खेती की तुलना में हाइड्रोपोनिक खेती का इस्तेमाल कर कम जगह में अधिक पौधों को उगाया जा सकता है।
- इस विधि द्वारा पोषक तत्व बिना किसी हानि के आसानी से पौधों को प्राप्त हो जाते है।
- फसल भी अच्छी गुणवत्ता वाली होती है।
- इस तकनीक में पौधे मौसम, जानवरों या किसी तरह के जैविक व अजैविक कारणों से प्रभावित नहीं होते है ।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

समाज के विकास में सामुदायिक रेडियो की भूमिका

अलीमुल इस्लाम[1]*, नौशाद आलम[2] एवं राजीव सिंह[3]

[1एवं 3]कृ. वि. के., किशनगंज, बिहार, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, फ़िरोज़ाबाद

पत्राचारकर्ता: alikhan9695@gmail.com

परिचय

सामुदायिक रेडियो रेडियो प्रसारण में एक महत्वपूर्ण तीसरा स्तर है, जो सार्वजनिक सेवा रेडियो प्रसारण और वाणिज्यिक रेडियो से अलग है। सामुदायिक रेडियो स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, कृषि आदि से संबंधित मुद्दों पर स्थानीय आवाजों को प्रसारित करने के लिए समुदायों को एक मंच प्रदान करता है। चूंकि सामुदायिक रेडियो प्रसारण स्थानीय भाषाओं और बोलियों में होता है, इसलिए लोग इससे तुरंत जुड़ पाते हैं। सामुदायिक रेडियो स्टेशन स्थानीय समुदायों द्वारा स्थापित और संचालित किया जाता है।सामुदायिक रेडियो, विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को मजबूत करने की क्षमता रखता है। सामुदायिक रेडियो जहां, प्रत्येक राज्य अपनी अलग भाषा और सांस्कृति विरासत का कोष लिये है वहीं स्थानीय कलाकारों को समुदाय के समक्ष उनकी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए मंच मुहैया कराता है।

भारत में जहां एक तरफ एंटरटेंनमेंट मीडिया हर साल तरक्की की नई ऊँचाई छू रहा है, वहीं दूसरी तरफ,एक बड़ी आबादी कम्यूनिटी रेडियो यानी सामुदायिक रेडियो के नाम से बहुत कम परिचित है। सामुदायिक रेडियो का दायरा बेहद छोटा होना और इसके प्रसारण और फायदा पाने वालो का बेहद आम और स्थानीय होना इसके प्रमुख कारण है।

सामुदायिक रेडियो स्टेशन ऐसे समुदायों द्वारा परिचालित और संचालित होते हैं और उनका स्वामित्व भी उनका ही होता है, जिनके लिए वे सेवा प्रदान करते हैं। सामुदायिक रेडियो लाभ कमाने के लिए नहीं होते और यह व्यक्ति विशेष, समूह और समुदायों की अपनी विविध कहानियों को कहने, अनुभवों को बांटने की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं और संचार माध्यम से सम्पन्न दुनिया में सक्रिय संचार माध्यम के सहयोगी बनते हैं। दुनिया के कई हिस्सों में, स्वयंसेवी क्षेत्र, नागरिक समाज, एजेंसियों, गैर-सरकारी संगठनों और नागरिकों के लिए सामुदायिक रेडियो और सामुदायिक विकास तथा प्रसारण उद्देश्यों के कार्य में भागीदारी के माध्यम के रूप में काम करता है।

सामुदायिक रेडियो ऐतिहासिक रूप से विभिन्न देशों में विभिन्न ढंग से विकसित हुआ और इसलिए यूनाइटेड किंगडम, आयरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया में इस शब्दावली का कुछ अलग-अलग अर्थ होता है फ्रान्स, अर्जेंटीना, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और आयरलैंड जैसे कई देशों में एक विशिष्ट प्रसारण क्षेत्र के रूप में सामुदायिक रेडियो की महत्वपूर्ण कानूनी परिभाषा की गयी है। परिभाषा के रूप में सामाजिक लाभ, सामाजिक उद्देश्य, सामाजिक प्राप्ति जैसे वाक्यांश शामिल किये।

कोरोना जैसी भयावह बीमारी के संक्रमण को रोकने के लिए जब केन्द्र सरकार द्वारा 24 मार्च 2020 को लॉकडाउन की घोषणा से ग्रामीण समुदायों में खलबली मच गई थी क्योंकि ग्रामीण समुदाय इस प्रकार के अप्रत्याशित कदम के लिए तैयार नहीं थे। कोरोना महामारी के संक्रमण से बचाने, अफवाहों से सचेत रहने व आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित कराने के लिए देशभर के सामुदायिक रेडियो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई स ऐसे में सामुदायिक रेडियो ग्रामीण समुदायों की मदद के लिए आगे आए और उनकी समस्याओं, जरूरतों को शासन-प्रशासन तक पहुंचाया ताकि जरूरतमंदों को राशन एवं अन्य रोजमर्रा की जरूरत की चीजें पहुंचाई जा सकें। लॉकडाउन के दौरान उन्हें संक्रमण एवं अफवाहों से बचने के लिए सचेत करने, उनका मनोबल बढ़ाने के लिए कई प्रकार के शिक्षाप्रद कार्यक्रमों के साथ ही लोकसंगीत एवं लोकगाथाओं का प्रसारण भी किया। सामुदायिक रेडियो समुदायों को सशक्त बनाने का सबसे सशक्त माध्यम है। यही कारण है कि सरकार सामुदायिक रेडियो की संख्या बढ़ाने पर बल दे रही है। हाल ही के एक सर्वेक्षण में यह बात का खुलासा हुआ है कि टेलीविजन के बाद रेडियो सूचना और मनोरंजन का सबसे सशक्त माध्यम है।

सातवें सामुदायिक रेडियो सम्मेलन के अवसर पर सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने सामुदायिक रेडियो स्टेशनों के कार्यों एवं उनके उत्साह की प्रशंसा की थी और कहा था कि सामुदायिक रेडियो

समाज को सशक्त बनाने का काम कर रहा है। आपदाओं के वक्त सूचनाओं को तेजी से पहुंचाने में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। इसी अवसर पर मौजूद सूचना एवं प्रसारण सचिव ने भी सामुदायिक रेडियो की प्रासंगिकता को रेखांकित किया था और कहा था कि देश के प्रत्येक जिले में एक सामुदायिक रेडियो स्टेशन होना चाहिए। दरअसल, केन्द्र सरकार सामुदायिक रेडियो की संख्या बढ़ाकर 500 तक करना चाहती है और इसी कड़ी में गत वर्ष सामुदायिक रेडियो के लिए 118 नए लाइसेंस जारी किए गए हैं लेकिन इस सब के बावजूद अभी तक केवल 289 सामुदायिक रेडियो स्टेशन ही अस्तित्व में आ पाए हैं। सामुदायिक रेडियो की अवधारणा आकाशवाणी की रेडियो सेवा को ध्यान में रखकर की गई थी। आकाशवाणी सरकारी तंत्र की सहायता से सूचनाओं का अदान-प्रदान करने के साथ-साथ गीत-संगीत, साक्षात्कार तथा परिचर्चाओं के जरिए जनता से रूबरू होता था और यही एकमात्र सूचना, संगीत और मनोरंजन का साधन था। आकाशवाणी और दूरदर्शन के जरिए दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार की आवाज तो पहुंच जाती थी लेकिन समुदाय की आवाज को अपनी बात रखने का प्लेटफार्म नहीं मिल पाता था। समुदाय को विकास योजनाओं से जोड़ने तथा योजनाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने तथा उनकी प्रमुख आवश्यकताओं को बारे में शासन-प्रशासन अनभिज्ञ रहता था। समय के साथ-साथ ग्रामीण समुदायों के जोड़ने की पहल हुई और पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए अधिक अधिकार दिए गए ताकि पंचायतों के जरिए सरकारी योजनाओं का लाभ हर अंतिम व्यक्ति तक पहुंचे और ऐसा हुआ भी, लेकिन जानकारी एवं साक्षरता के अभाव में समाज के कई तबके पीछे छूट गए। समाज के हर अंतिम व्यक्ति तक सरकारी योजनाओं का लाभ पहुंचाने और जागरूक तथा शिक्षित बनाने के उद्देश्यों ने सामुदायिक रेडियो की परिकल्पना को साकार किया है। सामुदायिक रेडियो विशुद्ध रूप से समाज सेवा के मकसद से चलाए जा रहे हैं। यह शैक्षणिक संस्थानों तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों के उत्थान के उद्देश्यों से चलाए रहे हैं और इनका सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ है कि यह समुदायों की सशक्त आवाज बनकर क्षेत्रीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

सामुदायिक रेडियो समुदायों को आपस में जोड़ने तथा सामुदायिक भावना से सामूहिक निर्णय लेने समुदायों को प्रेरित कर रहे हैं। गांव के विकास में सामुदायिक रेडियो की भूमिका बढ़ी है। सामुदायिक रेडियो को हम इन शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं कि ष्यह जनता के लिए जनता द्वारा, जनता का है। सामुदायिक रेडियो का स्वरूप लोकतांत्रिक है जिसमें हर व्यक्ति को बोलने, सुनने और कार्यक्रम बनाने की पूरी छूट है। रेडियो संचार का एक ऐसा माध्यम है जिससे ग्रामीणों के विकास और सशक्तिकरण की राह खुलती है और निरक्षर भी अपनी भागीदारी निभा सकते हैं।

इसके ग्रामीण न केवल श्रोता हैं, बल्कि कार्यक्रम निर्माण में भी उनकी प्रमुख भूमिका होती है। रेडियो के माध्यम से ग्रामीणों को विभिन्न सरकारी योजनाओं, पंचायती राज और ग्रामीण विकास जैसे मुद्दों पर स्थानीय भाषा में जानकारी मिल रही है। रेडियो एक ऐसा माध्यम है, जो सस्ता है और इसकी पहुंच सब लोगों तक है। जहां भी सामुदायिक रेडियो स्थापित हुए हैं वहां ज्यादातर ग्रामीणों के पास रेडियो सेट हैं और अब तो सभी मोबाइल में एफ. एम. रेडियो मौजूद है जिससे अब यह हर ग्रामीण की पहुंच में है और वे बड़े गर्व से अपने सामुदायिक रेडियो को सुनते हैं। उन्हें लगता है कि यह उनका अपना रेडियो है, जहां वे अपनी बात अपनी भाषा में आसानी से रख सकते हैं क्योंकि इनके ज्यादातर प्रस्तोता उनके ही आसपास के गांवों से हैं जो उन्हें उनकी बात उनकी भाषा में न सिर्फ सुनाते हैं बल्कि समझाते भी हैं। अक्सर देखा जाता है कि पारंपरिक मीडिया मसलन टी.वी. और अखबारों में ग्रामीण खबरों, समस्याओं और मुद्दों का अभाव रहता है। ऐसे में सामुदायिक रेडियो ग्रामीण भारत को शहरी भारत से जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। लोकल सर्कल नामक संस्था द्वारा के हालिया सर्वे में 203 जिलों के 23 हजार लोगों ने हिस्सा लिया, जिनमें से 43% लोगों ने कहा कि ऑनलाइन क्लासेस के लिए उनके पास कम्प्यूटर, टेबलेट, प्रिंटर, राउटर जैसी चीजें नहीं है। इस मामले में ग्रामीण क्षेत्रों की हालत और ज्यादा खराब है। ग्रामीण इलाकों में प्रति सौ लोगों पर केवल 21.76 व्यक्ति के पास इंटरनेट है और स्मार्टफ़ोन और हाईस्पीड इंटरनेट तो मात्र 8-10 प्रतिशत के पास है तो बच्चे पढ़ेंगे कैसे?

ऐसे में ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों की मदद के लिए देशभर में स्थित विभिन्न सामुदायिक रेडियो आगे आये हैं और अपना एक घंटे-दो घंटे का स्लॉट बच्चों की पढ़ाई के लिए शुरू किया है और कई जगह पढ़ाई शुरू हो चुकी है। हरियाणा के नूंह जिले में हाशिए पर खड़े समुदायों को विकास की मुख्यधारा में शामिल करने और सामुदायिक गतिविधियों में हर स्तर पर उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए घाघस ब्लॉक में सहगल

फाउंडेशन द्वारा अल्फाज-ए-मेवातष् सामुदायिक रेडियो वर्ष 2012 में स्थापित किया गया है जो पिछले 8 वर्षों से अनवरत जारी है।

रेडियो अपने शुरूआती दौर से ही बच्चों को 'रेडियो स्कूल' और 'स्कूल चलें हम जैसे कार्यक्रमों के जरिए अंग्रेजी की बुनियादी शिक्षा देने के साथ ही हर बच्चे को अनिवार्य शिक्षा देने पर बल देता आ रहा है। रेडियो जिले के 225 गांवों के ग्रामीणों को विभिन्न सूचनापरक और मनोरंजन कार्यक्रमों के साथ-साथ शिक्षा, चिकित्सा, स्वच्छता, जल संरक्षण एवं एवं संचयन, कृषि, पर्यावरण तथा आजीविका से जुड़े मुद्दों पर जानकारी देता है। रेडियो समुदाय के हर वर्ग मसलन बच्चों, महिलाओं, किसानों, किशोरों तथा वृद्ध लोगों से विभिन्न कार्यक्रमों के जरिए जुड़ा है। रेडियो के माध्यम से विभिन्न सरकारी योजनाओं, पंचायती राज और ग्रामीण विकास जैसे मुद्दों पर स्थानीय भाषा में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं

एक ऐसा रेडियो केन्द्र जो कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, सामुदायिक विकास, संस्कृति सम्बन्धी कार्यक्रमों के प्रसारण के साथ-साथ समुदाय के लिए तात्कालिक प्रासंगिता के कार्यक्रमों का प्रसारण करता हैद्य सामुदायिक रेडिओ की संज्ञा दी जा सकती हैंद्य सामुदायिक रेडियो को किसी एक परिभाषा में बाँधना सम्भव नहीं है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

हाइड्रोपोनिक्स खेती: एक संक्षिप्त परिचय

अलीमुल इस्लाम[1]*, नौशाद आलम[2] एवं राजीव सिंह[3]

[1एवं 3]कृ. वि. के., किशनगंज, बिहार, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर
[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, फ़िरोज़ाबाद

पत्राचारकर्ता: alikhan9695@gmail.com

परिचय

हाइड्रोपोनिक्स मिट्टी के बजाय पानी आधारित पोषक तत्वों का प्रयोग करके पौधे उगाने की तकनीक है। हाइड्रोपोनिक खेती घर के अंदर पौधे उगाने का एक प्रभावी तरीका है और इसके विभिन्न तरीकों से अपने फायदे हैं। हाइड्रोपोनिक उत्पाद को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में ऊंची कीमत मिलती है। हाइड्रोपोनिक उत्पादन प्रणालियों का उपयोग छोटे किसानों, शौकीनों और वाणिज्यिक उद्यमों द्वारा किया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में फसल की उपज और पैदावार को बढ़ाने के लिए हर दिन नए-नए तरह के अविष्कार हो रहें है। साथ ही कई नई-नई तकनीकों का उपयोग भी बहुत तेजी से हो रहा है। ऐसी ही एक तकनीक हाइड्रोपोनिक खेती भी शामिल है। हाइड्रोपोनिक खेती पानी, बालू या कंकड़ों में की जा सकती है। नियंत्रित जलवायु में बिना मिट्टी के पौधे उगाने की तकनीक को हाइड्रोपोनिक कहते हैं। इस तकनीक के जरिए फसल पानी और उसके पोषण स्तर के जरिए बढ़ती है। जानकारी के अनुसार हाइड्रोपोनिक खेती में पारंपरिक खेती की अपेक्षा मात्र 10 फीसदी पानी की जरूरत पड़ती है. हाइड्रोपोनिक खेती अधिकतर पश्चिमी देशों में की जा रही है, लेकिन भारत में भी हाइड्रोपोनिक खेती की धूम ळें राजस्थान जैसे शुष्क क्षेत्रों के किसान इस ओर ज्यादा आकर्षित हैं। यहीं नहीं गोवा में भारत सरकार की मदद से हाइड्रोपोनिक तकनीक के जरिए हरा चारा उत्पादन इकाई की स्थापना की गई है। हाइड्रोपोनिक खेती से हो रहे लाभ को देखते हुए कृषकों का रुझान हाइड्रोपोनिक खेती की ओर देखने को मिल रहा है, किसान पारम्परिक खेती को छोड़ इसकी और आकर्षित हो रहें हैं।

हाइड्रोपोनिक खेती किसे कहते हैं

इस तकनीक में सिर्फ पानी के जरिये ही फसलों को उगायी जाती है। यह खेती करने का एक आधुनिक तरीका है, जिसमे बिना मिट्टी का प्रयोग किये आधुनिक तरीके से खेती की जाती है। इसमें पाइप में पोषणयुक्त पानी बहती है, जिसके उपर पौधे लगाये जाते हैं। पौधों की जड़े उससे अपना न्यूट्रिशन लेती है। बाजार में हाइड्रोपॉनिक्स तकनीक के कई मॉडल उपलब्ध हैं। इस तकनीक से पानी बेहद कम खर्च होता है। इसमें पारालाइट और कोकपिट की जरूरत होती है। इस खेती को लगभग 15 से 30 डिग्री तापमान और 80 से 85 प्रतिशत आद्र्रता (भ्नउपकपजल) में किया जा सकता है।

पौधों को पोषक तत्व कैसे प्राप्त होते हैं

पौधों को बढ़ने के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जो कि उसे मिट्टी में उपस्थित तत्वों से प्राप्त होते हैं। अगर मिट्टी का प्रयोग न किया जाये तो पौधों को पोषक तत्व कैसे प्राप्त होंगे। इसके लिए फास्फोरस, नाइट्रोजन, मैग्निशियम, कैलशियम, पोटाश, जिंक, सल्फर, आयरन जैसे पोषक तत्वों तथा खनिज प्रदार्थो को एक उचित मात्रा में मिलाकर मिश्रित कर लिया जाता है। मिश्रण किये गए इस घोल को निर्धारित समय में देते रहना चाहिए, जिससे पौधों को सभी पोषक तत्व समय समय पर प्राप्त होते रहें। पारंपरिक खेती हो या हाइड्रोपोनिक खेती, पौधों का ख्याल रखना बेहद जरूरी होता है। हाइड्रोपोनिक खेती में पौधों को थोड़ी दूरी पर लगाएं ताकि पौधों में वृद्धि हो सके। जल प्रवाह की जांच करते रहें, साथ ही पौधों में कोई समस्या आने पर जल्द उपचार करें या विशेषज्ञ से सलाह लें।

हाइड्रोपोनिक खेती करने का तरीका

हाइड्रोपोनिक खेती करने के लिए ज्यादा जगह की जरूरत नहीं होती है। इस विधि से 2 या फिर 10 प्लांटर के सिस्टम से खेती शुरू कर सकते हैं, इस तकनीक में पाइप का इस्तेमाल किया जाता है। जिसमे कई छेद होते है, इन्हीं छेदों में पौधे लगाए जाते है। पौधे की जडें ़पाइप के अंदर होनी चाहिए जहां पोषक तत्व युक्त पानी भरा होता हैजिसमे जड़ें डूबी

रहती हैं। वर्तमान समय में इस तकनीक का इस्तेमाल केवल छोटे पौधों वाले फसलों की खेती में किया जा रहा है, जैसे- शिमला मिर्च, मटर, मिर्च, स्ट्रॉबेरी, ब्लैकबेरी, ब्लूबेरी, तरबूज, खरबूजा, अनानास, अजवाइन, तुलसी,गाजर, शलजम, ककड़ी, मूली, आलू आदि उगा सकते हैं।

कीट और रोग

पौधों में कई तरह की बीमारियों हो जाती हैं। कभी पत्ते पीले होते हैं, तो कभी पौधों में कीट लग जाते हैं। इससे बचाव के लिए कीटनाशक का प्रयोग करें या किसी कृषि विशेषज्ञ से जाकर सलाह ले सकते हैं।

हाइड्रोपोनिक खेती में लगने वाली लागत

इस तरह की तकनीक का इस्तेमाल करने में पहले अधिक लागत लगती है, किन्तु एक बार यह प्रणाली प्रभावी रूप से चलन में होती जाती हैं, वैसे लागत में कमी आती जाती है। फिर आप इसमें खेती कर अधिक लाभ कमा सकते है। इसमें कम जगह में अधिक पौधे उगाये जा सकते है। इसमें होने वाले खर्च की बात करें तो हाइड्रोपोनिक तकनीक स्थापित करने में प्रति एकड़ के क्षेत्र में तक़रीबन 50 लाख रूपए का खर्च होगा। यदि आप छोटी जगह में इस तकनीक को स्थापित करना चाहते है तो 100 वर्ग फुट के क्षेत्र में लगभग 50,000 से 60,000 रूपए तक का खर्च आ सकता है। इतने क्षेत्र में तक़रीबन 200 पौधों को उगा सकते है। यदि आप चाहे तो अपने घर की छत पर भी इस तकनीक का इस्तेमाल कर खेती कर सकते है।

हाइड्रोपोनिक खेती के लाभ

- इस तकनीक का इस्तेमाल कर आप अधिक पानी की खपत से बच सकते हैं।
- हाइड्रोपोनिक खेती में लगभग 90 प्रतिशत पानी की बचत होती है।
- परंपरागत खेती की तुलना में हाइड्रोपोनिक खेती का इस्तेमाल कर कम जगह में अधिक पौधों को उगाया जा सकता है।
- इस विधि द्वारा पोषक तत्व बिना किसी हानि के आसानी से पौधों को प्राप्त हो जाते है।
- फसल भी अच्छी गुणवत्ता वाली होती है।
- इस तकनीक में पौधे मौसम, जानवरों या किसी तरह के जैविक व अजैविक कारणों से प्रभावित नहीं होते है ।

❖❖